सामयिक

नेहा

शिक्षा एवं स्वास्थ्य की त्रैमासिक पत्रिका

जुलाई से सितम्बर 2021

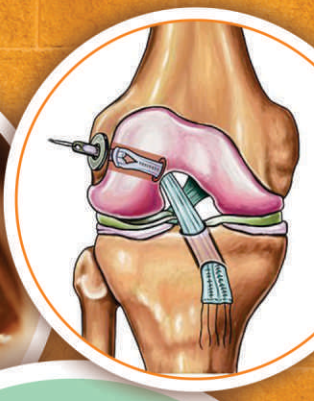

हम कैसे देखते हैं

नवजात शिशु एवं पीलिया

जोड़ो में अगर बढ़ जाय दर्द

हमें कैसे बदल डाला महामारी ने

₹20

नेहा साहित्य वार्षिकी-2021

साहित्य एवं कला जीवन का उत्सव है, मनुष्यता के उन्नयन का साधन है। साहित्य और कला नश्वर में शाश्वत का प्रतीक है। साहित्य सामाज को गति और स्पंदन देता है। साहित्य को इन्ही मूल्यों के अन्तर्गत नेहा साहित्य वार्षिकी 2019 और नेहा साहित्य वार्षिकी 2020 के बाद नेहा साहित्य वार्षिकी 2021 का प्रकाशन अपनी प्रक्रिया में है। इस आयोजन में विरासत, कला, कविता, विविध विधायें, चिकित्सकों का साहित्य, सिन्धी साहित्य एवं विज्ञान कथा आदि शीर्षक के अन्तर्गत विमर्श होना है। लगभग 160 पृष्ठों के इस आयोजन के द्वारा अंचलों, कस्बों में रचे जा रहे साहित्य पर विमर्श और उसकी स्थिति और प्रवृति की पड़ताल करना है। वाद-विवाद प्रतिवाद एवं घोषित विचार धारा के इतर मानवीय मूल्य, राष्ट्रीयता एवं सकरात्मक सोच इस साहित्यिक आयोजन के केन्द्र में होगा । इस वार्षिकी का लोकार्पण दिसम्बर 2021 को एक साहित्य सेमिनार में होना है।

यह साहित्यिक आयोजन आप सभी प्रबुद्ध एवं समाज के हित चिन्तक लोगों के मार्ग-दर्शन, सानिध्य एवं सहयोग से ही सभव हो पाऐगा। यदि आप लिखते हैं तो साहित्य के किसी भी विधा में अप्रकाशित रचनायें आमंत्रित है। किसी सुधी साहित्यकार को जानते है तो उनको कहें। साहित्य वार्षिकी के लिए आप के सुझाव की महती आवश्यकता है।

प्रबंध सम्पादक
डा. महेन्द्र अग्रवाल

सम्पादक
कुसुम बुढलाकोटी

सह सम्पादक
ध्रुवदास मोदी

समूह सम्पादक
महेन्द्र बुढलाकोटी

कार्यकारी सम्पादक
अमित कुमार

उपसम्पादक
सूरज कुमार भारती

संस्थापक सदस्य – 20000/–
सहयोगी सदस्य – 5000/–

किसी भी प्रकार के सम्पर्क हेतु
अमित कुमार
नेहा साहित्य वार्षिकी
नांगलिया अस्पताल परिसर, नार्मल रोड, गोरखपुर
samyikneha@gmail.com 9532659184, 9899646814

विज्ञापन की दरें	
आवरण पृष्ठ (4)	100000/–
आवरण पृष्ठ (2)	50000/–
आंतरिक पृष्ठ (3)	50000/–
आंतरिक पृष्ठ (पूरा)	20000/–
आंतरिक पृष्ठ (आधा)	10000/–

सहयोग राशि सीधे बैंक में/या चेक व ड्राफ्ट द्वारा नांगलिया एजुकेशन हेल्थ एसोसिएशन (Nangalia Education & Health Association)
खाता संख्या 0183000100328222, पंजाब नैशनल बैंक, बैंक रोड, गोरखपुर
IFSC PUNB 0018300 मे जमा किया जा सकता है।

कोरोना संकट और साप्ताहिक बन्दी

वैश्विक संकट कोरोना ने हमारे दैनिक जीवन, आहार-विहार और तौर-तरीकों को बहुत हद तक प्रभावित किया है। कोरोना काल में हमने बहुत से तौर-तरीकों को अपनी सुविधा-सहुलियत और बचाव की वजह से या तो अपना लिया है या बना लिया है। समय के सापेक्ष तौर-तरीकों में बदलाव आवश्यक भी होते हैं। कोरोना से बचाव का एक तरीका हम लोगों ने दो दिन का साप्ताहिक बन्दी के रूप में अपनाया है। इस बन्दी ने आवश्यक सेवाओं को छोड़कर सभी कुछ बन्द रहते हैं यहाँ तक कि आवागमन भी। यह कई मामलों में काफी कारगर और लाभकारी साबित हुआ है। पहला यह कि दो दिन की बन्दी से कल-कारखाने, यातायात एवं अन्य गतिविधियों के बन्द होने से पर्यावरण ठीक होता है तथा वातावरण से अपशिष्ट और हानिकारक तत्वों की प्रक्रियागत तरीके से विस्थापित होकर शुद्ध होने का समय मिल जाता है। दूसरा यह कि लॉकडाउन के बाद दो दिन की बन्दी कोरोना के प्रसार को रोकने में सहायक हुआ। तीसरा लोग दो दिन के इस अवकाश में अपने परिवार, माता-पिता, सगे-सम्बन्धियों एवं हित-मित्र के साथ परस्पर संवाद किये जो कि जीवन की आपाधापी में या तो कम हो गया था या तो एकदम बन्द हो गया था। व्यक्ति सुबह उठा तो कार्य स्थल पर जाने की आपाधापी और लौटा तो कुछ घरेलू कार्य, खाना-पीना और फिर सो जाना। एक दिन की रविवारीय छुट्टी में व्यक्ति अपने कार्यों तक ही सीमित हो जाता था।

यदि यह साप्ताहिक बन्दी कोरोना के पूर्ण खात्में के बाद भी जारी रहे तो यह हमारे सामाजिक ताने-बाने को मजबूत करेगा। लोग इस दो दिन के अवकाश का उपयोग सगे-सम्बन्धियों, मित्रों के घर आने-जाने में करेंगे, बुजुर्ग माँ-बाप को उनके मनचाहा जगहों पर ले जाने का समय भी उनके पास होगा। यह दो दिन का अवकाश पर्यटन को भी बढ़ावा देगा। हम अपने आस-पास के उन जगहों पर भी नहीं जा पाते हैं, जहाँ पर बाहर से सैलानी आते हैं। इस तरह की जगहों पर जाने का समय और इच्छा दोनों उपलब्ध करायेगा यह दो दिन का अवकाश। इस दो-दिन के अवकाश में कुछ सप्ताह ऐसे भी आयेंगे जिसके आगे-पीछे कोई अवकाश होगा। इससे यह दो दिन का अवकाश तीन-चार दिन का हो जायेगा और तब हम अपने शहर के बाहर घूमने या सगे-सम्बंधियों के वहाँ जाने की योजना बन पायेंगे। इस दो दिन की बन्दी में हम अपना मनचाहा बहुत कुछ कर सकते हैं जो समयाभाव में नहीं किया जा सका था पुस्तक पढ़ना, बागवानी, संगीत सुनने जैसे बहुत से शौक को पूरा किया जा सकता है। इस दो दिन की बन्दी से सफाई व्यवस्था, नगर के सौन्दर्यीकरण ने मरम्मत एवं निर्माण कार्य, सड़क-नाले आदि के मरम्मत का कार्य सुगमता एवं बिना व्यावधान के हो सकेगा। अधिकांश देशों में पाँच दिन की कार्य अवधि होती है। दो दिन का यह अवकाश यह हमारे आज की मांग के हिसाब से अच्छा है। इसका सार्थक उपयोग हमें करना चाहिए।

-डा० महेन्द्र अग्रवाल

प्रधान एवं प्रबन्ध सम्पादक

नव अन्वेषण वीथिका

एंटीबॉडी पर शोध

रोगों के इलाज का एक तरीका यह हो सकता है कि शरीर का बीमारियों से लड़ने का जो प्राकृतिक तरीका है, उसे दोहराया जाए या उस प्रक्रिया को और मजबूत किया जाए। शरीर का रोग प्रतिरोधक तंत्र रोगाणुओं से लड़ने के लिए एंटीबॉडी बनाता है, जो उस रोग के बैक्टीरिया या वायरस को नष्ट या प्रभावहीन कर देती हैं। टीके इसी सिद्धांत पर काम करते हैं। वे रोग पैदा करने वाले जीवाणु के कमजोर रूप को या उससे मिलती जुलती जैविक संरचना को शरीर में प्रविष्ट कर देते हैं, शरीर का रोग प्रतिरोधक तंत्र उसे पहचानकर एंटीबॉडी बना लेता है, जो रोग होने से रोक देती हैं। एक अन्य तरीका, जो कम कारगर रहा, रोग होने पर शरीर में एंटीबॉडी डालना है। जब से कोरोना महामारी शुरू हुई है, वैज्ञानिक एंटीबॉडी पर आधारित इलाज खोजने में जुटे हुए हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण हमारे यहाँ हाल तक आजमाई गई प्लाज्मा थेरेपी है, जिसमें कोविड के ठीक हो चुके मरीज से प्लाज्मा लेकर कोविड-मरीज को चढ़ाया जाता है। अभी-अभी उबरे मरीज के रक्त में कोविड वायरस विरोधी एंटीबॉडी बड़ी संख्या में होती हैं। प्लाज्मा थेरेपी इसी उम्मीद में दी जाती थी कि ये एंटीबॉडी कोविड मरीज के शरीर में वायरस से लड़ने में मददगार होंगी। इसके अलावा भी कई एंटीबॉडी आधारित इलाज दुनिया में आजमाए जा रहे हैं।

इन इलाजों के कारगर और लोकप्रिय न होने की एक वजह तो यह है कि एंटीबॉडी खून में चढ़ाई जाती हैं, जबकि कोरोना वायरस मुख्यतः फेफड़ों पर हमला करता है। इसकी वजह से फेफड़ों तक पहुँचने वाली एंटीबॉडी बहुत कम हो जाती हैं। दूसरे, एंटीबॉडी वायरस के कुछ रूपों पर ही आक्रमण करती हैं। इससे वायरस के नए रूप बनने और फैलने का खतरा बढ़ जाता है। इन्हीं वजहों से प्लाज्मा थेरेपी को रोक दिया गया। अब वैज्ञानिक ऐसी एंटीबॉडी बनाने की कोशिश में हैं, जिनमें ये दोनों कमियाँ न हों, यानी वे सीधे फेफड़ों में पहुँच सकें और वायरस के तमाम रूपों के खिलाफ कारगर हो। अमेरिका की टेक्सास यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने एक ऐसा नेजल स्प्रे बनाया है, जो चूहों में कोरोना वायरस को नियंत्रित करने में कामयाब हुआ है। अब इस स्प्रे के मनुष्यों पर प्रयोग की तैयारी हो रही है। यदि यह सफल रहा, तो हमें ऐसी दवा मिल सकती है, जिसे नाक में स्प्रे करने से कोविड का इलाज सरल हो सकता है। नाक में स्प्रे करने की वजह से दवा सीधे हमारे श्वसन-तंत्र और फेफड़ों में जाएगी और वहाँ कोरोना वायरस का मुकाबला करेगी।

इसके लिए वैज्ञानिकों ने तमाम कोरोना विरोधी एंटीबॉडी में से आईजीजी नामक एंटीबॉडी को सबसे ज्यादा मुफीद पाया। ये एंटीबॉडी कोरोना-मरीज के शरीर में काफी बाद में विकसित होती हैं। वैज्ञानिकों ने इन एंटीबॉडी के हिस्सों को आईजीएम नामक एंटीबॉडी से जोड़ दिया, जो कोरोना संक्रमण की स्थिति में शुरू में तेजी से बनती हैं। इस तरह, जो नई आईजीएम एंटीबॉडी बनीं, वे कोरोना के बीस से भी ज्यादा रूपों के विरुद्ध कारगर थीं, यानी इससे नए रूप विकसित होने का खतरा भी कम है। अब देखना यह होगा कि मनुष्यों में यह इलाज कितना कारगर और सुरक्षित है। यह भी देखना होगा कि ये एंटीबॉडी मानव शरीर में कितनी देर टिकती हैं। अच्छी बात यह है कि इन्हें नेजल स्प्रे की तरह दवा दुकानों में रखा जा सकता है। अगर यह तरीका कारगर सिद्ध हुआ, तो दूसरी बीमारियों के इलाज के लिए भी एक रास्ता खुल जाएगा।

खास जीन के कारण कुछ में नहीं दिखते कोरोना के लक्षण

कोरोना की चपेट में आए कुछ लोगों पर बीमारी का कम असर होने या उनके एसिम्टोमेटिक बने रहने का पता

सामयिक नेहा

शिक्षा एवं स्वास्थ्य की त्रैमासिक पत्रिका

RNI-UPHIN / 1999 / 1113

वर्ष - 24 | अंक 96 | जुलाई से सितम्बर 2021 | मूल्य ₹ 20

संस्थापक
स्व० सरदार मल नांगलिया

चेयरमैन नेहा
राधेश्याम अग्रवाल

प्रबन्ध एवं प्रधान सम्पादक
डा. महेन्द्र अग्रवाल

सम्पादक
कुसुम बुढलाकोटी

कार्यकारी सम्पादक
अमित कुमार

सह सम्पादक
डा. दिनेश अग्रवाल
ध्रुवदास मोदी

पत्रिका संयोजक
मोहन आनन्द आज़ाद

सम्पादकीय कार्यालय

नांगलिया अस्पताल परिसर
नार्मल रोड, गोरखपुर-273 001 (उ.प्र.)
दूरभाष : 2336121, 2332095
samyikneha@rediffmail.com

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे। पत्रिका सम्बन्धित किसी प्रकार के विवाद का निपटारा गोरखपुर न्यायालय के अन्तर्गत होगा।

कहाँ क्या ?

- आपका पत्र मिला 02
- सम्पादकीय 05
- म्यूटेशन सतत विकास का सामान्य नियम - प्रो. ज्ञानेश्वर चौबे 04
- डेल्टा वैरिएंट से मुकाबला करेंगे डटकर- डा. रमन कुमार 05
- तन-मन को तोड़ता तनाव - संचिता शर्मा, रोशनी नायर 07
- हमें कैसे बदल डाला महामारी ने ? - डॉ. चन्द्रकांत लहारिया 08
- कैंसर होने की अवधारणायें - डा. श्रीगोपाल काबरा 13
- नवजात शिशु में पीलिया - डा. अरविन्द दुबे 16
- कैसे देखते हैं हम ? - डा. प्रेमचंद्र स्वर्णकार 18
- हृदय रोग से मुक्ति - डा. अभय बंग 25
- टीबी अनदेखी की तो जानलेवा - डा. अरीना हुदा सिद्दीकी 30
- बहुत देर पीठ झुकाकर न रखें - डा. सुदीप जैन 32
- अजी छोड़िए भी कैलोरी की गिनती - डा. कविता देवगन 33
- प्राकृतिक जीवन शैली है योग - डा. सुनीता कुमार 35
- जोड़ों में अगर बढ़ जाए दर्द - डा. दीपक रैना 38
- सेहतमंद रहे लिवर - डा. सोमनाथ चट्टोपाध्याय 39
- उदर-विकार की असलियत - डा. विमल कुमार मोदी 40
- स्वस्थ समुद्र, स्वस्थ पृथ्वी - डा. अनिता भटनागर जैन 44
- प्रोत्साहन मांगता पारंपरिक चिकित्सा ज्ञान - क्षमा शर्मा 46

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी डा. महेन्द्र अग्रवाल के द्वारा कमल आफसेट प्रिन्टर्स, दुर्गाबाड़ी रोड, गोरखपुर से छपवाकर नेहा प्रकाशन, नागंलिया अस्पताल परिसर, नार्मल स्कूल रोड, गोरखपुर से प्रकाशित किया। सम्पादक : कुसुम बुढ़लाकोटी।

आपका पत्र मिला

जनवरी विशेषांक के लिए पूरे संपादकीय टीम को बहुत-बहुत साधुवाद। महामारी पर एक साथ इतना जानकारी अद्भुत है। निश्चित ही यह अंक लम्बे समय तक के लिए संग्रहणीय एवं उपयोगी रहेगा।

वैभव तिवारी
पडरौना, कुशीनगर

पत्रिका का नया अंक हर बार की तरह प्रभावशाली और संग्रहरणीय है और इस स्तर को बनाये रखने के लिए सम्पादकीय मण्डल के मेहनत और लगन के लिए आप सबको साधुवाद।

उमेश पटेल
(व्हाट्सएप से प्राप्त 6394468353)

सामयिक नेहा का जनवरी अंक किसी रोग विशेष पर केन्द्रित विशेषांक होता है। विशेषांक किस रोग विशेष पर होगा यह सम्पादकीय मण्डल एवं सलहाकार समिति की बैठक में निर्णित होता है। इसमें हम पाठकों की सहभागिता चाहते हैं कि आप विशेषांकों के लिए हमें सुझाव एवं सलाह दें। इससे हमें और बेहतर करने में प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन मिलेगा।

शारीरिक वजन को हाथ में रखने की दो ही कुंजियाँ हैं- भोजन एवं व्यायाम ।

-विट्ठल दास मोदी

इस सृष्टि में ऐसी कोई सम्पत्ति नहीं जो मन की शान्ति से बड़ी हो।

- तथागत बुद्ध

पत्रिका का नया अंक के सभी लेख उत्कृष्ट हैं। इसके लिए पूरी सम्पादकीय टीम बहुत-बहुत बधाई। अगला विशेषांक महामारी या करोना पर ही केन्द्रीत करने पर विचार करें।

सौम्य (व्हाट्सएप से प्राप्त 7905889737)

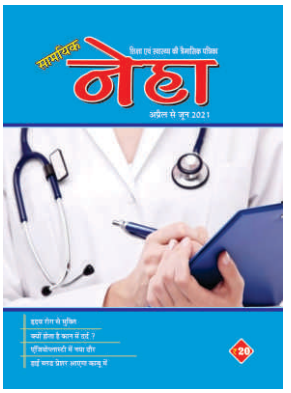

प्रत्येक अंक पर प्रतिक्रिया हमें बेहतर करने के दिशा में हमारा मार्ग दर्शन करती है। हमें आप की प्रतिक्रिया एवं सुझावों का इंतजार रहता है। प्रतिक्रिया एस०एम०एस० से 8896021220 पर भी भेजा जा सकता है।

नेहा के विज्ञपन की दरें

अन्तिम पृष्ठ (कवर)	रू. 50000.00
कवर पेज 2 एवं 3	रू. 30000.00
आन्तरिक पूरा पृष्ठ	रू. 15000.00
आन्तरिक आधा पृष्ठ	रू. 10000.00
आन्तरिक एक चौथाई	रू. 5000.00

विशेष- सामयिक नेहा में प्रकाशित कोई भी विज्ञापन तीन माह से ज्यादा समय तक पाठकों के समक्ष प्रदर्शित रहता है तथा उसके बाद भी यह पत्रिका के नष्ट होने तक प्रदर्शित रहता है क्योंकि पत्रिका में प्रकाशित लेखों की प्रसांगिकता और उपयोगिता लम्बे समय तक बनी रहती है।

सम्पादकीय

जीवन प्रक्रिया सतत परिवर्तनशील है। हममें, आसपास के वातावरण, वस्तुओं में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। कुछ परिवर्तन स्पष्ट हैं कुछ अप्रत्यक्ष रुप से होते रहते हैं यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है। जीवन में विभिन्न रंग आते-जाते रहते हैं। इसमें कभी छाँव कभी धूप कभी सफलता तो कभी विफलता, से सामना होता है। कभी प्रेम कभी घृणा कभी सुख तो फिर दुःख प्रसन्नता, अप्रसन्नता, कभी मिलना कभी बिछुड़ना, उतार-चढ़ाव, विभिन्न परिस्थितियों से सामना होता रहता है। अपनी क्षमता के अनुसार सभी इससे पार पाते हैं। किसी का भी जीवन ऐसा नहीं है कि उसका विषम स्थितियों से सामना न हुआ हो। अपना-अपना संघर्ष सभी को करना होता है, संघर्ष की चुनौती का सामना कर ही व्यक्तित्व में निखार आता है, प्रगति के मार्ग में व्यक्ति आगे बड़ता है। स्वयं के जीवन के लिए सभी एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं, परिवार से, समाज से, मित्रों से, राष्ट्र से लेना-देना चलता रहता है हम सभी एक दूसरे के पूरक हैं। एक-दूसरे के सहयोग, साथ से ही जीवन में आगे बड़ते रहता है।

वर्तमान में हम सभी कोरोना महामारी के संकट से जुझ रहे हैं। इस महामारी के विकराल रूप ने सामान्य जनजीवन अस्त व्यस्त कर दिया है। जीवन के हर पक्ष पर इसका दुष्प्रभाव पड़ा है। एक भय पूरे विश्व में भर उठा, कोई भी इसकी भयावहता से अछुता नहीं रह पाया। इससे उबरने के लिए सभी प्रयास किये जा रहे हैं। इसकी दूसरी लहर पहली लहर से भी भयावह रही। बड़ी संख्या में लोग इसकी चपेट में आ गये, असंख्य लोग अपना जीवन गंवा बैठे। सरकारी स्तर पर इससे निपटने के लिए पूरे प्रयास किये जा रहे हैं पर यह प्रयास तभी सफल हो पायेंगे जब समस्त नागरिक इसमें सहयोग करें। सावधानी रखें आवश्यक नियमों का पालन करें। स्वयं को सुरक्षित रखकर दूसरों की सुरक्षा में सहयोग करें।

दुःख की बात है कि पढ़े-लिखे लोग भी असावधानी व लापरवाही करने से बच नहीं पा रहे हैं। सरकारी नियम थोड़े ढीले हुए कि सब निकल पड़े। मास्क तक लगाना भूल गये व निश्चित दूरी का भी पालन करना भूल गये कि एक आदमी की लापरवाही कितनों के जीवन को संकट में डाल सकती है। इसका उसे ज्ञान ही नहीं है।

पहाड़ों में लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी है। अभी कोरोना महामारी का खतरा टला नहीं है यह बात जानकर भी लोग सैर-सपाटों में लग गये हैं। इस तरह के कार्यों से बचना जरूरी है, सबसे आवश्यक है कि पहले स्वयं सुरक्षित रहें, जीवन सुरक्षित रहेगा तो भविष्य में सभी कार्य कर पायेंगे।

हमें यह बात समझनी होगी कि संकट अभी सामने है हमारे चिकित्सक, चिकित्साकर्मी लंबे समय से अपने जीवन को खतरे में डालकर भी कार्य कर रहे हैं। हमारे पुलिसकर्मी, स्वास्थ्य विभाग के सफाई कर्मी, नगरपालिका के कर्मचारी, बैंक के समस्त अधिकारी व विभिन्न विभागों के कर्मचारी निरतंर अपनी सेवाएं दे रहे हैं।

हमें इन सबका आभारी होकर सावधानी के सभी नियमों को अपना कर अपना सहयोग करना होगा अभी कोरोना की तीसरी लहर का खतरा अलग से सबके ऊपर मंडरा रहा है। इसके बचाव के लिए सरकारी तौर पर सभी संभव प्रयास किये जा रहे हैं। इस लहर में बच्चों के ऊपर भी खतरा बताया जा रहा है। युवाओं से भी सजगता रखने को कहा गया है। जब परिवार में बड़े सुरक्षित रहेंगे तभी बच्चे सुरक्षित हो पायेंगे। बच्चे न तो स्वयं को संभाल स्वयं कर सकते हैं न अपनी सुरक्षा ही पूर्णतः कर सकते हैं। बच्चों को बड़ों के मार्गदर्शन की, संभाल की पूर्णतः आवश्यकता है। स्वयं को सुरक्षित करके ही बड़े बच्चों का मार्गदर्शन कर पायेंगे।

कल्पना करें कि यदि किसी परिवार के बच्चे के ऊपर इस महामारी का संकट आया या जीवन इस महामारी की चपेट में आया तो उस परिवार की स्थिति क्या होगी, कितनी पीड़ा से उस परिवार को गुजरना होगा। सावधान रहें नियमों का पालन करें अपने बच्चों की युवाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करें, हमारे युवा, हमारे बच्चे ही देश का भविष्य हैं। ये सुरक्षित रहेंगे तभी भविष्य सुरक्षित रहेगा। तो संकल्प लें कि आवश्यक सावधानी व नियमों को अपना कर इस महामारी के संकट से उबरने में सहयोगी बनेंगे।

जीवन रहेगा तो भविष्य में भ्रमण के, आनंद के, उत्सव के, मिलने-जुलने के अनेक अवसर आयेंगे तो पहले जीवन की सुरक्षा सुनिश्चित करें, स्वयं की, परिवार की, समाज की, आपका इस ओर बड़ाया कदम कईयों को सुरक्षित करने में मदद करेगा। शुभकामनाओं सहित !

- कुसुम बुढ़लाकोटी

म्यूटेशन सतत विकास का सामान्य नियम

- प्रो. ज्ञानेश्वर चौबे
जीन विज्ञानी

जिस जीवनचर्या और खानपान में लापरवाही की शिकायत आमतौर पर रहती थी, वह गत वर्ष एक महामारी के खौफ के कारण काफी हद तक दुरुस्त हो गई। इस लापरवाही से संबंधित कई अन्य बीमारियों से भी छुटकारा मिलने लगा और जिस मास्क को यदा-कदा ही इस्तेमाल में लाया जाता था, जीवनशैली का हिस्सा बन गया। यही नहीं, पूरे वर्ष जड़ी-बूटियों से लेकर एलोपैथिक दवाइयों तक में इम्युनिटी बूस्टर (शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाला) तत्वों की खोज की गई। हम सफल भी हुए और अब चाहकर भी घर के बाहर असमय आहार लेने से बच रहे हैं। हालांकि लोगों के मन में एक बड़ी दुविधा आन पड़ी है कि इन विधाओं से जो इम्युनिटी हमने अब तक अर्जित कर ली है, क्या वह वायरस के सबसे घातक नए स्ट्रेन पर प्रभावी होगी। यहां हमें यह समझना होगा कि ऐसा बिल्कुल भी नहीं है कि वायरस जिस चाल से म्यूटेट (उत्परिवर्तित) हो रहा है, उसी अनुपात में हमें अपनी प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ानी पड़ेगी। बस करना यह है कि अब तक हमारे शरीर की जो इम्युनिटी बन चुकी है, उसे बनाए रखें। हां, यदि इम्युनिटी कम हुई तो समझ लीजिए नया स्ट्रेन पहले से ज्यादा हमलावर हो सकता

आज जब हम 2020 को पीछे छोड़ चुके है, तो यह पूछना स्वाभाविक है कि 2021 में इस महामारी का स्वरूप क्या होगा। लंदन से निकले नए स्ट्रेन ने न सिर्फ पूरी दुनिया में डर व्याप्त है, वरन कई भ्रांतियां भी फैल गई हैं। काफी लोग तो नए स्वरूप वाले कोरोना वायरस के आगे अपनी इम्युनिटी ही नहीं, बल्कि वैक्सीन को भी निरर्थक मान बैठे हैं। यह सही नहीं है। दरअसल, हालीवुड की फिल्मों में हमने म्यूटेशन का हमेशा उल्टा स्वरूप देखा है, जिसमें लैब में जन्मा कोई जानवर या वायरस पूरी मानवता के लिए खतरा बन जाता है। हकीकत में म्यूटेशन तो जीव-जंतुओं के सतत विकास का एक सामान्य नियम है, क्योंकि इसके बिना जीवन का उद्भव या क्रमिक विकास ही नहीं हो सकता। म्यूटेशन के बगैर धरती पर कोई भी जीव नहीं पनप सकता, यहां तक कि इंसान भी नहीं। वायरस के नए स्ट्रेन में एक बात समझने वाली यह है कि म्यूटेशन सामान्य से थोड़ा ज्यादा है। आरएनए वायरस के स्पाइक प्रोटीन में दो म्यूटेशन-(एन 501 और एच 69/वी70डी) हुआ है, वहीं अब तक कुल 17 म्यूटेशन हो चुके हैं। यह स्पाइक प्रोटीन मानव कोशिकाओं को हाईजैक करने का काम करता है, जिससे संक्रमण दर बढ़ी है, हालांकि प्रयोगशाला में इसे अभी और समझना होगा।

फाइजर, मॉडर्ना और ऑक्सफोर्ड की वैक्सीन वायरस के सभी स्पाइक को खत्म करने के लिए हमारे शरीर में जरूरी प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने में पर्याप्त सक्षम है। वैक्सीन की डोज के बाद मानव शरीर भी प्रोंतिक तौर पर स्पाइक के कई हिस्सों पर हमला करना सीख जाता है। यही कारण है कि वैक्सीन इस स्ट्रेन के खिलाफ भी काम करेगी। हालांकि अब जल्द ही बड़े पैमाने पर होने वाला टीकाकरण

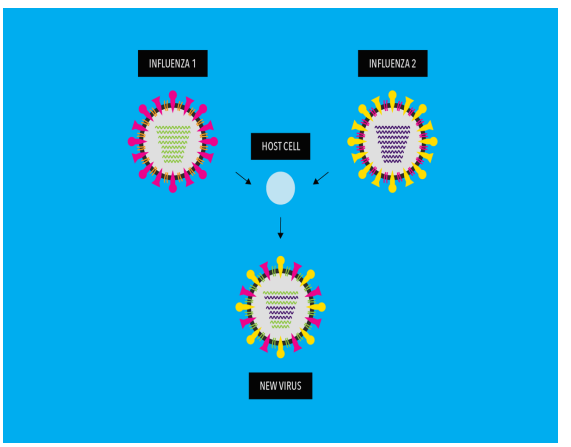

शेष पृष्ठ सं. 49 पर

डेल्टा वैरिएंट से मुकाबला करेंगे डटकर

– डा. रमन कुमार
फिजिशियन

हमारे देश में कोरोना की दूसरी लहर पर काफी हद तक काबू पा लिया गया है, जो पिछले साल शुरू हुई पहली लहर की तुलना में कहीं अधिक खतरनाक थी। अब कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्वास्थ्य विशेषज्ञ सितंबर-अक्टूबर में कोरोना की तीसरी लहर की आशंका जता रहे हैं। दूसरी तरफ दस्तक दे रहा है, इसका डेल्टा वैरिएंट, जिसकी तीव्रता काफी अधिक है। इन सबको देखते हुए हमें पहले से ही तैयारियां करनी चाहिए। तीसरी लहर की आशंका और इसके छोटे आयुवर्ग पर प्रभाव के कयासों के बीच नेशनल कमीशन फार प्रोटेक्शन आफ चाइल्ड राइट्स (एनसीपीसीआर) ने कहा है कि अगर कोविड-19 की तीसरी लहर की आशंका जताई जा रही है और इससे बच्चों के प्रभावित होने का कुछ भी अनुमान है तो 'बच्चों और नवजात शिशुओं को संक्रमण से बचाने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों को समय रहते रणनीति बनानी होगी।

सर्तकता ही बचाएगी : मीडिया लगातार रिपोर्ट कर रहा है कि पिछले कुछ दिनों से डेल्टा प्लस वैरिएंट के साथ कोरोना के मामले भी बढ़ रहे हैं, जिससे तीसरी लहर की आशंका तेज हो गई है। एम्स, नई दिल्ली के निदेशक डा. रणदीप गुलेरिया का कहना है कि अनलॉक के बाद जिस तरह से लोग कोविड प्रोटोकाल का पालन नहीं कर रहे हैं, उसे देखते हुए तीसरी लहर से बचना मुश्किल हो जाएगा। तीसरी लहर हो या डेल्टा वैरिएंट, बचने के लिए तीन बातों का ध्यान रखना सबसे जरूरी है। कोविड प्रोटोकाल का कड़ाई से पालन करना, कोविड के मामलों से निपटने के लिए बेहतर रणनीति और टीकाकरण। इस स्थिति को देखते हुए हमें सतर्क रहने की जरूरत है, ताकि अप्रत्याशित स्थिति से बचा जा सके।

बुनियादी नियम न भूलें : दो गज की शारीरिक दूरी बनाए रखें। मास्क पहनें। हाथ सैनिटाइजर अथवा साबुन से साफ रखें।

ज्यादा से ज्यादा टेस्टिंग : ज्यादा से ज्यादा टेस्टिंग सबसे जरूरी है, ताकि संक्रमित लोगों की तुरंत पहचान कर

अगर बच्चों में निम्न लक्षण दिखाई दें तो

- तुरंत डाक्टर को दिखाएं।
- बच्चे की त्वचा का रंग पीला पड़ जाए और छूने पर ठंडी महसूस हो।
- यदि सांस लेने में दिक्कत हो।
- होंठो के आसपास नीला पड़ जाए।
- बच्चे को दौरे पड़ने लगे।
- बच्चा लगातार रोता रहे या सोता रहे।
- त्वचा पर चक्कते पड़ जाएं।

क्या बच्चों के लिए अधिक है खतरा

कोविड-19 की तीसरी लहर से बच्चे कितने प्रभावित होंगे, इसके बारे में अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता, फिर भी सावधानी रखने और मुश्किल स्थितियों के लिए तैयार रहने में कोई हर्ज नहीं है। कोरोना की दूसरी लहर में जो बच्चे संक्रमित हुए उनमें से 90 फीसद में या तो मामूली या कोई लक्षण दिखाई नहीं दिए। इंडियन अकेडमी आफ पीडियाट्रिक्स (आईएपी) ने कहा है कि बच्चों का शरीर नाजुक होता है और उनका रोग प्रतिरोधक तंत्र भी पूरी तरह से विकसित नहीं हुआ होता है। ऐसे में उनके संक्रमण की चपेट में आने की आशंका अधिक होती है। वहीं एम्स, नई दिल्ली के निदेशक डा. रणदीप गुलेरिया का कहना है कि तीसरी लहर में बच्चे सबसे अधिक प्रभावित होंगे, यह केवल दावा है। अभी इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

दूसरे लोगों में संक्रमण को फैलने से रोका जा सके। अगर आपको थोड़ी सी भी आशंका हो तो तुरंत कोरोना की जांच कराएं।

वैक्सीनेशन : अधिक से अधिक लोग जल्द से जल्द वैक्सीन लगवा लें। वैक्सीनेशन अधिक होगा, तो तीसरी लहर से बचने के लिए हमारी तैयारी उतनी ही बेहतर होगी।

डबल मास्क का इस्तेमाल : डबल मास्क का इस्तेमाल करें, क्योंकि सिंगल मास्क की तुलना में यह अधिक सुरक्षा प्रदान करता है। सस्ती गुणवत्ता की जगह बेहतरीन क्वालिटी का एन-95 मास्क इस्तेमाल करें। इसके ऊपर सर्जिकल क्लाथ मास्क बांध सकते हैं। सस्ते मास्क से बचें। ये आपके कान, त्वचा और श्वास तीनों के लिए तकलीफदेह साबित होते हैं। यदि आप इन्हें बार-बार उतारते हैं और इस प्रकार संक्रमण की आशंका बढ़ जाती है।

इंडोर गैदरिंग से बचना : बंद स्थानों पर इकट्ठा होने से बचें। घर-आफिस में वेंटिलेशन का ध्यान रखें, ताकि हवा जल्दी स्वच्छ हो जाए।

सेल्फ मेडिकेशन से दूरी : कोविड की दूसरी लहर के दौरान अधिक लोगों ने बिना चिकित्सक की सलाह के अपनी मर्जी से दवाईयां ली हैं। अपनी मर्जी से दवाईयां लेना या किसी और को दी गई सलाह पर दवायें लेना या किसी की नकल करना ठीक नहीं है। यदि कोई दवा किसी एक व्यक्ति के लिए उपयुक्त है, तो दूसरे को फायदा पहुँचाए, यह जरूरी नहीं है।

शुरूआत में स्टेरायड का इस्तेमाल नहीं : डाक्टरों और मरीज के परिजनों को उपचार के दौरान सतर्क रहने की जरूरत है। उपचार के पहले दिन से स्टेरायड नहीं दिया दिया जाना चाहिए। इसे छठे दिन से दिया जाना चाहिए, अन्यथा म्यूकोरमायोसिस हो सकता है।

- ग्रेटर नोएडा, उ.प्र.

सामयिक नेहा का प्रत्येक अंक विशेषज्ञ सलाहकारों के अनुमोदन से ही प्रकाशित होकर आपके हाथों में पहुँचता है। सामयिक नेहा सलाहकार समिति के सदस्य हैं।

श्री सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल, डा० राधा जीना, डा० सविता अग्रवाल, डा० महेन्द्र बुढ़लाकोटी, डा० रीना श्रीवास्तव, डा० विमल कुमार मोदी, डा० आर०के० पाण्डेय, डा० ममता अग्रवाल, डा० दीपक मालवीय, डा० ए०के० सिंह, डा० रामशरण, अशोक नारायण धर दुबे एडवोकेट, डा० राधा मोहन दास अग्रवाल, डा० ए०के० ठक्कर, डा० राजमन दास (होमियोपैथ), वैद्य अरूण कुमार श्रीवास्तव (आयुर्वेद), डा० राजीव अग्रवाल, डा० नीरज नाथानी, डा० रूचिका अग्रवाल, डा. निष्ठा नांगलिया अग्रवाल।

तन-मन को तोड़ता तनाव

- संचिता शर्मा, रोशनी नायर

पुणे होटल की चौथी मंजिल से 25 साल के एक सॉफ्टवेयर इंजीनियर ने पिछले महीने मौत की छलांग लगा ली। उसे नौकरी खोने का डर सता रहा था। इसी तरह, मैसूर में भी एक 21 वर्षीय टेकी अपने किराये के घर में फांसी पर झूल गई। उसकी लाश पंखे से लटकती मिली। ये दोनों ऐसे करियर से जुड़े थे, जिनमें संभावनाएं काफी थीं, बावजूद उन्होंने मौत को गले लगाना पसंद किया।

आखिर ऐसा क्यों होता है कि कुछ लोग जान दे देते हैं, जबकि कुछ तमाम मुश्किलों का सामना धैर्य से करते हैं और फिर आगे बढ़ते हैं? इसकी वजह तनाव की मात्रा नहीं है, बल्कि कारण यह है कि आप उस तनाव का किस तरह से सामना करते हैं। हर व्यक्ति किसी न किसी मोड़ पर तनाव का सामना जरूर करता है, पर वह आपको तोड़ता है या संवारता है, यह इस पर निर्भर करता है कि आप उसका क्या समाधान निकालते हैं।

फोर्टिस द्वारा आठ शहरों में 2463 लोगों पर किए गए अध्ययन से निकला नतीजा बताता है कि तनाव की सबसे बड़ी वजह 'पूअर एडाप्टिव विहेवियर' है। यानी एक तरह का ऐसा व्यवहार, जो व्यक्ति को असल व कथित समस्याओं से निपटने में अक्षम बना देता है। इस कारण हम अनकहे कष्ट और दर्द, धुकधुकी, अपच, अनिद्रा और अवसाद के शिकार बन सकते हैं। अध्ययन करने वाले फोर्टिस हेल्थकेयर के मेंटल हेल्थ ऐंड विहेवियरल साइंस के निदेशक डा. समीर पारिख कहते हैं, 'परिस्थितिजन्य या स्थितिगत कारकों से अधिक आपका तनाव इस बात पर निर्भर करता है कि उसका सामना करने की आपमें कितनी क्षमता है। ज्यादातर लोग बिना किसी परामर्श या दवाई के प्रतिदिन तनाव का सामना कर लेते हैं। लिहाजा जरूरत व्यक्ति के कम्युनिकेशन एंड सोशल स्किल (बात-व्यवहार व सामाजिक कौशल) के निर्माण करने की है, और यह उस शख्स को मुखर होने, सकारात्मक सोचने और काम व जीवन के बीच संतुलन साधने के लिए प्रोत्साहित करके किया जा सकता है।'

अध्ययन में यह पाया गया है कि ज्यादातर लोग कुछ हद तक तनाव से जरूर पीड़ित रहते हैं। सर्वे में शामिल 48 फीसदी लोगों में इतना अधिक तनाव पाया गया कि उन्हें परामर्श व इलाज की जरूरत थी, जबकि करीब 30 फीसदी लोग तनाव से मुक्त थे और 22 फीसदी अपेक्षाकृत कम तनाव से जूझ रहे थे। डा. पारिख कहते हैं कि इस अध्ययन का अप्रत्याशित नतीजा यह था कि ज्यादा तनाव से गुजर रहे लोगों में से 79 फीसदी के तनाव की वजह उनका अपना व्यक्तित्व था, जबकि छह फीसदी मामलों से भी कम मामलों में इसके कारण बाहरी पाए गए। 'यह निष्कर्ष हमें बताता है कि यदि समस्या सुलझाने के व्यवहार को हम शुरुआत में ही जांच-परख लें और उसे मजबूत बनाएं, तो देश की बड़ी आबादी बिना किसी डॉक्टरी परामर्श से अपने तनाव को परे धकेल सकती है। यह किया जाना जरूरी भी है, क्योंकि भारत में प्रशिक्षित मनोचिकित्सकों और काउंसलरों की भारी कमी है।' आकलन यही है कि देश की आठ से दस फीसदी आबादी तनाव, चिंता, अवसाद, सिजोफ्रेनिया या नशे की वजह से किसी न किसी तरह के मनोरोग से पीड़ित है, मगर यहाँ प्रति लाख आबादी पर सिर्फ 0.3 मनोचिकित्सक हैं, जबकि चीन में यही आकड़ा 1.7 है, यानी वहाँ एक लाख की आबादी पर 1.7

मनोचिकित्सिक हैं।

दरअसल तनाव को जीने वाले अधिकतर लोग तभी डॉक्टरों के पास जाते हैं, जब उन्हें लगता है कि हालात अब पूरी तरह से बिगड़ गए हैं। यह मानना है, नवी मुंबई के वाशी में स्थित हीरानंदानी अस्पताल में सलाहकार मनोचिकित्सक डॉ केदार तिल्वे का। वह कहते हैं कि 'जिस तरह से आप अपनी कार की ब्रेक को तब तक ठीक कराने का इंतजार नहीं करते, जब तक कि वह पूरी तरह से टूट न जाए, इसी तरह तबीयत पूरी तरह नासाज होने या अपोलो अस्पताल के वरिष्ठ सलाहकार मनोचिकित्सिक डा. संदीपवोहरा ने एक ऐसी मशीन ईजाद की है, जो शुरुआत में ही तनाव को पहचान लेती है। वह बताते हैं, 'इस मशीन की पृष्ठभूमि साल 2003 में तैयार हुई, जब मुंबई हवाई अड्डे पर सीआईएसएफ के एक जवान ने अपने डिप्टी कमांडर को इसलिए गोली मार दी थी, क्योंकि वह बराबर उसकी छुट्टी को नामंजूर कर रहा था। सीआईएसएफ ने मुझसे संपर्क किया और मैंने अंतरराष्ट्रीय वेरा पीफिस्टर स्केल को संशोधित करके उसे स्ट्रेसोमीटर में ढाल दिया। यह एक ऐसा सटीक यंत्र है, जो जवानों में सांस्कृतिक व सामाजिक रूप से तनाव मापता है। स्ट्रेसोमीटर इस मामले में दूसरी मशीनों से अलग है कि यह बड़ी आबादी का तनाव उसके स्तर और स्रोत, दोनों के आधार पर माप सकता है। निष्कर्षों के आधार पर यह समस्या के निपटने के तरीके भी सुझा सकता है, जिसमें वे गंभीर मामले भी शामिल हैं, जहाँ मरीज को पेशेवर इलाज की जरूरत पड़ सकती है। डा. वोहरा कहते हैं, 'आज अधिकतर लोग तनाव में जीते हैं, पर उन्हें इसका इल्म नहीं होता। लिहाजा यह एक बेमिसाल मशीन है, जो इंसान के अंतर्निहित तनाव को पहचान लेती है। इस कारण उसे दूर करने के प्रभावी कदम उठाए जा सकते हैं।' डा. वोहरा एक ऑनलाइन स्क्रिनिंग टेस्ट भी संचालित करते हैं, जिसकी फीस 200 रुपये है। इस टेस्ट का बखूबी इस्तेमाल रोगियों व कर्मचारियों में तनावकी पहचान करने लिए अस्पतालों व कॉरपोरेट हाउस द्वारा किया जा रहा है।

बीएमजे की रिपोर्ट बताती है कि तनाव हमारे कामकाज को प्रभावित करता है और कामकाज से संबंधित बीमारियों में से एक तिहाई की वजह यही है। इतना ही नहीं, तनावजनित रोग की वजह से हम आधे से अधिक अपना कामकाजी वक्त भी जाया कर देते हैं। डा. पारिख कहते हैं, 'तनाव आमतौर पर लक्षणों से ही जाहिर होता है, इसका कोई शारीरिक आधार नहीं होता। यानी इसमें सिरदर्द या दूसरी तरह के मानसिक दर्द हों, यह जरूरी नहीं।' यह तो सबको पता ही है कि तनाव की वजह से हार्टअटैक (दिल का दौरा) आ सकता है। हिंदी फिल्मों में हमने देखा भी है कि किस तरह बुरी खबर सुनते ही न जाने कितने कलाकार छाती पकड़कर इस दुनिया से विदा हो गए, मगर यह बात कम लोगों को ही पता है कि तनाव शरीर के कई दूसरे हिस्सों को भी प्रभावित करता है। यह खून का दबाव बढ़ा (उच्च रक्तचाप) सकता है, जिस कारण हृदय-रोग व स्ट्रोक (मानसिक आघात) का खतरा बढ़ जाता है। यह पेट में अम्ल के स्रावको भी बढ़ा सकता है, जिस कारण अल्सरेटिव कोलाइटिस और इरिटेबल बोउल सिंड्रोम जैसे रोग हो सकते हैं। तनाव हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को भी नुकसान पहुंचा सकता है, जिस कारण संक्रामक रोगों के गिरफ्त में आने का खतरा बढ़ जाता है। यह अस्थमा जैसी एलर्जी को भी बढ़ा सकता है और हमें चिंता व अवसाद के लंबे दौर में भी डाल सकता है, जिस कारण हम नशे की ओर बढ़ सकते हैं।

ऐसे में सवाल यही है कि इससे कैसे मुकाबला किया जाए? चूंकि यह संभव ही नहीं है कि मुश्किल-हालात जीवन में न आएं, इसलिए अच्छा विकल्प यही है कि हम सेहतमंद तरीकों को अपनाएं। डॉ वोहरा की मानें, तो एक तरीका यह है कि मन और शरीर को शांत रखने वाले नुस्खे अपनाए

शेष पृष्ठ सं. 15 पर

हमें कैसे बदल डाला महामारी ने?

– डॉ. चन्द्रकांत लहारिया
जन नीति एवं स्वास्थ्य तंत्र विशेषज्ञ

अनुभव अति आत्मविश्वास को भी जन्म दे सकता है। विश्व ने 2009-10 में स्वाइन फ्लू (एच1 एन1) महामारी का सामना किया था। लेकिन आज अधिकतर लोगों, जिनमें स्वास्थ्य क्षेत्र के लोग भी शामिल हैं, को स्वाइन फ्लू संक्रमण और महामारी की ज्यादा याद नहीं है। यूं तो महामारियों का इतिहास मानव सभ्यता के इतिहास से नजदीकी से जुड़ा हुआ है, लेकिन चौदहवी शताब्दी में यूरोप में फैले प्लेग, जो 'ब्लैक डेथ' या 'काली मौत' के नाम से आज भी जाना जाता है, ने महामारियों को रोकने के कुछ सिद्धांतों को जन्म दिया। समय के साथ, इसमें नई समझ विकसित हुई। स्वाइन फ्लू से लड़ने के लिए लगभग उन्हीं सिद्धातों का पालन किया गया था। भारत में हवाई अड्डों पर विदेश से आने वालों की स्क्रीनिंग शुरू कर दी गई थी। ऐसे लोग, जिनको संक्रमण की संभावना थी, को जांच रिपोर्ट आने तक क्वारंटाइंन किया गया। जिनमें संक्रमण मिला, उन्हें आइसोलेशन अर्थात पृथकवास में रखा गया। सार्वजनिक स्वास्थ्य से जुड़े लोगों को निगरानी और संपर्क में आने वालों की पहचान सुनिश्चित करने संबंधी प्रशिक्षण दिया गया। जहाँ तक स्वाइन फ्लू महामारी की चपेट में आए लोगों के उपचार की बात है, तो इतना भर किया गया कि हर शहर के बड़े सरकारी अस्पतालों के एक-दो वार्डस को आइसोलेशन वार्डस में तब्दील कर दिया गया। महामारी के कुछ महीनों में जितने मामले प्रकाश में आए, उनसे आसानी से पार पा लिया गया। सारी दुनिया तथा भारत में भी स्वाइन फ्लू के टीके की खोज शुरू हुई। टीके बन भी गए, लेकिन टीकों के आने से पहले ही स्वाइन फ्लू के मामले कम होने लगे और महामारी खत्म होने के कगार पर आ गई थी। जल्द ही लोगों ने भी इस महामारी को भुला सा दिया। आपको हैरत होगी कि 1918-20 में दुनिया को हिला देने वाली विषाणु एच1 एन1 के एक नये स्ट्रेन से फैली थी।

बीते दो दशकों में, विषाणु कई देशों में बीमारियों को फैलने के कारण रहे हैं सिवियर एक्यूट रेस्पिरेट्री सिंड्रोम (सार्स), एवियन या बर्ड फ्लू, जीका, इबोला और मिडिल ईस्टरेस्पिरेट्री सिंड्रोम (मर्स) आदि। हालांकि संक्रामक बीमारियों के विशेषज्ञ, वैश्विक महामारियों के खतरे के बारे में नियमित रूप से चेताते रहे हैं, लेकिन अधिकतर देश इन चेतावनियों को लंगभग अनसुना करते रहे हैं। महामारियों से लड़ने के लिए कदम लिए गए, मगर बहुत छोटे स्तर पर। वास्तविकता तो यह है कि फरवरी, 2020 के आखिरी दिनों तक, जब नया कोरोना वायरस कई देशों में तेजी से पांव पसार रहा था, कई देश, जो इसकी सीधी चपेट में नहीं आए थे, तब तक एक प्रकार की निश्चिंतता में थे कि 'इससे हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा' और हमारी तो मुकम्मल तैयारी है। बीते साल मार्च के महीने में घटनाक्रम इतना तेजी से बदला कि कोविड-19 को वैश्विक महामारी घोषित करना पड़ा। भारत समेत दुनिया के लगभग सभी देशों ने अपनी घरेलू और अंतरराष्ट्रीय यात्री उड़ानें रोक दी और लॉकडाउन लगा दिए गए।

वायरस के फैलने पर शोध :- मुझे लगता है कि वायरस और मेरा तो जैसे कोई निकट का संबंध है। वैसे तो सर्दी जुकाम सामान्य बीमारी है, लेकिन बचपन से लेकर कुछ वर्षों पहले तक, साल में दो से तीन बार मुझे एक गंभीर

किस्म का सर्दी-जुकाम होता रहा है। दिलचस्प बात यह भी है कि, बीते बीस वर्षों में मैंने अनेक तरह के वायरस के फैलने और उनके प्रभाव को रोकने पर काम किया है। इस क्रम में मैने पोलियो के खात्मे, खसरे की बीमारी को रोकने और बच्चों के दिमागी ज्वर के साथ ही चिकनगुनिया महामारी (जो 2005-06 फैली थी) से निपटने के लिए काम किया। इसके अलावा, स्वाइन फ्लू, जीका और इबोला वायरस को लेकर भारत की तैयारियों की दिशा में सक्रियताओं में भी मैं शामिल रहा हूँ। यहां तक कि अखबारों में प्रकाशित मेरे सबसे पहले लेख (2003 में) का विषय सार्स वायरस और बीमारी था। और फिर 2006 में किसी मेडिकल जर्नल में प्रकाशित मेरा पहला लेख स्वाइन फ्लू पर था। हालांकि मैंने वायरस और उनसे जुड़ी हुईं बीमारियों पर काम जान-बूझकर नहीं शुरू किया था, लेकिन अब अगर पीछे मुड़कर देखें, तो कोई कह सकता है कि मैं अपने गंभीर खांसी जुकाम का बदला इन विषाणुओं के खिलाफ लड़कर ले रहा था।

जहाँ तक कोविड-19 की बात है, तो 24 मार्च, 2020 की शाम जब देशव्यापी लॉकडाउन घोषित किया गया, और उसके बाद के दिनों और महीनों में, बस फोन ही एकमात्र लेकिन बहुत महत्वपूर्ण संपर्क का जरिया रह गया था। कॉलेज के मित्र, जान-पहचान वाले और ऐसे लोग जिनसे मैं काफी समय से बात नहीं कर सका था, संपर्क करने लगे। कुछ को चिंता थी, तो कुछ इस वायरस और इस महामारी को लेकर सशंकित थे। हालांकि मैं महामारी और जन स्वास्थ्य-के क्षेत्र में काम करता हूँ, लेकिन मेरे कुछ मित्र, महामारी के दौरान, मुझसे ज्यादा अध्ययन कर चुके थे, कि आर-नॉट क्या है, और कि भारत के राज्यों में महामारी की मरीजों की संख्या दुगुने होने और मरीज ठीक होने की दर क्या है? लेकिन उनके पास तमाम संशय भी थे। बचाव, लक्षण, उपचार, और जैसे वैक्सीन कब तक आ जाएगी। मेरे सहयोगी और डॉक्टर, जो विभिन्न अस्पतालों में कार्यरत थे, जो शुरुआत में कोविड-19 को 'बेवजह' का हो-हल्ला कह रहे थे, कुछ दिनों बाद ही इसे एक वास्तविक खतरा और बड़ी चिंता का विषय मानने लगे थे । लोगों को अपनी.स्वास्थ्य जरूरतों के लिए अस्पताल जाना मुश्किल होने लगा था, क्योंकि ज्यादातर स्वास्थ्य सेवाएं बुरी तरह बाधित हो चुकी थीं-खासकर गर्भवती महिलाओं और गंभीर बीमारियों से ग्रस्त लोगों के लिए। सर्जरी और अस्पतालों में जांच की तारीखें, जो लंबे इंतजार के बाद मिली थीं, रद्द कर

दी गईं। सरकारी और निजी, दोनों तरह के अस्पतालों के वाह्य रोगी विभाग पूरी क्षमता से काम नहीं कर पा रहे थे। उसके बाद जून महीने के शुरुआती दिनों में नैरेटिव फिर से बदला। कोविड की स्वास्थ्य व्यवस्थाओं के लिए लगभग हर शहर से कमी की खबरें आने लगीं। मेरा कोई भी डॉक्टर मित्र ऐसा नहीं था, जिसको किसी कोविड-19 प्रभावित व्यक्ति के परिवार के सदस्य ने अस्पताल में बिस्तर दिलाने के लिए अनुरोध न किया हो।

महामारी का पड़ता है व्यापक असर :- लेकिन महामारी, केवल एक स्वास्थ्य समस्या भर नहीं होती। महामारी का असर मानसिक स्वास्थ्य पर भी होता है, और गंभीर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रभाव भी। राजमार्गों से गुजरने वाले अप्रवासी मजदूर, वायरस के शिकार नहीं हुए, लेकिन महामारी ने उनके जीवन में तूफान ला दिया था। अप्रवासी मजदूरों की दिक्कतें उनसे ज्यादा थीं, जो कोविड-19 से ग्रस्त हुए थे। चूंकि संगठित क्षेत्र में काम करने वाले लोगों के लिए 'वर्क फ्रोम होम' नया नॉर्म बन गया, इसलिए उनके लिए चुनौतियां कम थीं। असंगठित क्षेत्र और छोटे-मोटे काम-धंधे करने वाले मजदूरों पर तो बुरी गुजरी। उनकी तो आजीविकाएं तक छिन गईं क्योंकि अधिकतर मध्यम स्तर के काम-धंधे ठप हो चुके थे। विद्यालय बंद होने से बच्चों की पढ़ाई पर प्रतिकूल असर पड़ा। हालांकि कुछ हफ्तों और महीनों बाद पढ़ाई का सिलसिला वेब-आधारित प्लेटफार्मों पर शुरू तो हुआ, लेकिन यहां भी केवल धनाढ्य वर्ग ही अपने बच्चों की पढ़ाई को सामान्य बना सका। गरीब परिवारों के पास इंटरनेट और मोबाइल जैसी सुविधाएं नहीं होने के कारण खासी दिक्कतें हुईं। गरीब और संपन्न के बीच शिक्षा व्यवस्था में मौजूद खाई और चौड़ी हो गई। महिलाओं के लिए घरेलू कामकाज का बोझ बढ़ गया। उनके खिलाफ हिंसा के मामले भी बढ़े। गरीब परिवारों को नौकरियां छूटने का अंदेशा पैदा हो गया।

लॉकडाउन लगाए जाने के बाद कुछ दिनों तो सड़कें एकदम सूनी हो गईं। दरवाजों की घंटियां मौन हो गईं। मुझे याद है, कि लॉकडाउन लगने के कुछ दिन बाद हमारे दरवाजे की घंटी बजी। सुबह के सात बजे का समय था। दरवाजा खोला तो देखा, वह महिला जो हमारे घर के कामों में मदद करती है, बाहर खड़ी है। कुछ बैरिकेड्स और लॉकडाउन के दौरान मुस्तैद पुलिसकर्मियों को गच्चा देकर हमारे घर तक पहुंची थी। हमने उसे काम पर आने को नहीं कहा था, लेकिन वह काम शुरू करना चाहती थी। शायद उसे अपना काम छूटने का डर था क्योंकि उसकी बस्ती में कुछ लोगों के काम छूट जाने की चर्चा जोरों पर थीं। उसके दो बच्चे हैं, और वह अपने पैतृक शहर से, अपने पति के साथ रोजी-रोटी कमाने दिल्ली आकर रहने लगी है। उसका डर और चुनौतियां, उसके आसपास रहने वाले लोगों के समान ही थीं। हमने उसे लॉकडाउन हटने के बाद ही काम पर आने को कहा। अब भी वह हमारे घर पर काम करती है।

भयाक्रांत लोगों के उदाहरण :- ऐसे कई और उदाहरण हैं। जो व्यक्ति हमारे घर पर माली का काम करता है, वह कुछ अन्य जगहों पर भी काम करता है। वह हमारे घर से तकरीबन 15 किमी. दूर रहता है। साइकिल से हर दिन काम पर आता है। लॉकडाउन के करीब तीन हफ्तों के बाद अचानक उसका फोन आया। उसने काम पर वापस आने की अपनी इच्छा जताई। मैंने उससे कहा कि वह अपने घर पर रहे, और यह भी कि उसका वेतन नहीं कटेगा। उसने बताया कि उसने 'कप! पास' का जुगाड़ कर लिया है, क्योंकि वह एक अस्पताल में भी माली का काम करता है। वह कुछ अन्य जगहों पर अपना काम शुरू भी कर चुका था। यह बात इस चुनौती का परिचायक है कि किस तरह गरीब लोग हाशिये पर धकेले जाने से भयाक्रांत हो जाते हैं, उन परिस्थितियों से बाहर निकलने की भरपूर कोशिश करते हैं। मेरे लिए तो मार्च, 2020 के दूसरे हफ्ते से हर दिन के पहले कुछ घंटे, यह जानने और पढ़ने में गुजरने लगे कि चंद घंटे जो मैं सोने में गुजारे, उतने समय में महामारी के बारे में क्या नई जानकारी आई हैं। इंटरनेट और अखबारों को लगभग खंगाल देना, विश्वसनीय स्त्रोतों और फिर सहयोगियों से उनको सत्यापित करना, दिनचर्या का एक हिस्सा बन गया था। कई महीनों तक, हर दिन सुबह के आठ बजे तक में पिछली रात आई नवीनतम जानकारियों से लैस हो चुका होता था। कुछ हफ्तों में, यह

भी भान होने लगा कि महामारी के बारे में गलत और असत्यापित जानकारियां परोसी जा रही हैं, वो कोविड-19 महामारी के बराबर का ही खतरा थीं। पिछले साल के अप्रैल माह के अंतिम दिनों में मुझे, अपने एक रिश्तेदार का फोन आया। वह मध्य भारत के एक छोटे शहर में काम कर रहा युवा इंजीनियर है। बातचीत के दौरान उसने कोविड वैक्सीन को लेकर इधर-उधर की सूचनाओं के साथ अपनी निराशा का इजहार किया।

मैं जिस बात से पूरी तरह अनभिज्ञ था, वह भी बताई। उसने बताया कि कोविड-19 वैक्सीन ट्रायल में भाग लेने वाली ब्रिटेन की महिला की ट्रायल वैक्सीन लगाने के अगले दिन मृत्यु हो गई थी। और वह इस खबर को सुनकर काफी निराश हो गया था। उसे यह खबर एक व्हाट्सअप फॉर्वड से मिली थी। बाद में मुझे पता चला कि डॉ. इलिसा ग्रांटो, सूक्ष्म जैवविज्ञानी जो ट्रायल के लिए पहली भागीदार बनने को तैयार हुई थीं, इंटरनेट पर उनकी मौत के बारे में फैलाई जा रही भ्रान्तियों से बेहद नाराज थीं। जाहिर है कि उनक मौत संबंधी बात पूरी तरह झूठी थी। उन दिनों इस तरह की तमाम जानकारियाँ और सूचनाएं इधर से उधर भेजी जा रही थीं, बिना जाने कि सच हैं, या झूठ। महीनों बाद विश्व अभी भी महामारी की गिरफ्त में है, लेकिन विज्ञान ने आशा की किरण दिखाई है। बारह महीनों में बारह से ज्यादा लाइसेंसशुदा या स्वीकृत कोविड-19 वैक्सीन मिल चुकी हैं। वैक्सीन दी जानी आरंभ हो चुकी है, और उम्मीद कर सकते हैं कि वायरस को थामा जा सकेगा। आपने सिर्फ एक वैश्विक महामारी देखी है। हर महामारी अपने आप में अलग होती है, साथ ही, प्रत्येक महामारी से कुछ सबक जरूर मिलते हैं। कोविड-19 ने हमें याद दिलाया है कि विषाणु/जीवाणु गरीब-अमीर में अंतर नहीं करते, लेकिन उनके पड़ने वाले प्रभाव और असर, गरीबों या हाशिये पर पड़े लोगों को ज्यादा चपेटते हैं। हमें भान हो चुका है कि समाज को चिकित्सकीय देखभाल से ज्यादा जन स्वास्थ्य सेवाओं और बीमारियों से रोकथाम की सेवाओं की भी जरूरत है। हम जान चुके हैं कि नौकरियों, अर्थव्यवस्था, शहरीकरण, जलवायु परिवर्तन, वनों का कटान, एंटीबायोटिक दवाओं का अनुचित इस्तेमाल, बैटरी फार्मिंग, सामाजिक संपन्नता, बच्चों की शिक्षा, महिला स्वास्थ्य और जीवन के अन्य तमाम आयाम स्वास्थ्य के साथ गहरे जुड़े होते हैं। एक बार फिर जाहिर हो गया है कि सरकार के पैसे से संवर्धित मजबूत स्वास्थ्य प्रणाली की स्थापना की जाए। साथ में हम यह भी देख रहे हैं कि मात्र एक साल पहले स्वास्थ्य प्रणाली को मजबूत करने संबंधी जो वादे और प्रतिबद्धताएं जताई गईं, उन्हें लगभंग भुला सा दिया गया है। बीता एक साल हमें यह भी याद दिला गया है कि हमने महामारी विशेषज्ञों की चेतावनियों पर गौर किया होता तो कोविड-19 के प्रभाव से हम इस कदर, बुरी तरह से प्रभावित नहीं हुए होते। बेशक, हमने वह अवसर खो दिया था। सवाल उठता है कि कोबिड-19 महामारी से हम सबक लेंगे या नहीं? यह तो आने वाला समय ही बताएगा। लेकिन याद रखना होगा कि अनुभव तभी काम का होता है, जब उससे मिले सबकों को कार्यान्वित किया जाए।

(डॉ. लहारिया बहुचर्चित पुस्तक 'टिल वी विन : इंडियाज फाइट अगेंस्ट कोविड-19 पेन्डेमिक' के लेखक हैं। लेख में व्यक्त विचार निजी हैं)

कैंसर होने की अवधारणायें, परिकल्पनायें (हइपोथीसीस) तब और अब

- डा. श्रीगोपाल काबरा
एल०एल०बी०, एम०एससी० (मेडिकल), एम०डी० (एनॉटमी), एम०एस० (सर्जरी)

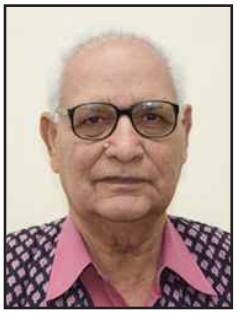

हाइपोथीसिस - परिकल्पना कैंसर क्यों होता है। भ्रम दूर करने के लिए यह जानना आवश्यक है।

ह्यूमर हाइपोथीसिस- आंतरिक द्रव-विकार परिकल्पना। हिप्पोक्रेटस की आदि काल की शरीर के अंदर 4 द्रव की परिकल्पना को, पांच शताब्दि बाद, ग्रीक चिकित्सक गेलेन ने प्रतिपादित किया। गेलेन ने इन्हे कार्डिनल फ्लूइड्स - मुख्य आधारद्रव की संज्ञा दी। इस परिकल्पना के अनुसार शरीर में 4 द्रव लाल, सफेद, पीला, और काला होते थे। इन्ही के असंतुलन से, कम और अधिक होने से, रोग होते थे। इनफ्लेमेशन -शोथ - जिसमें लालिमा, सूजन, तप्तता और पीड़ा होती है, को लाल द्रव (रक्त) की अधिकता से होना माना गया। टी बी की गांठ, नजला, फोड़े-फुन्सी और लिम्फग्रथियों की ठन्डी सूजन को फ्लेग्म (कफ) के अधिक होने से माना गया। जोन्डिस - पीलिया - को यलो बाइल (पीला पित्त) की बहुतायत से और कैंसर की गांठों को ब्लेक बाइल (काले पित्त) की बहुतायत घनीभूत होना ही कैंसर था। यह आंतरिक काले पित्त की विकृति का एक लाक्षणिक प्रतीक था।

1533 में एन्ड्रियेज वेसेलिअस नाम का 19 वर्ष का युवक पेरिस विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए आया। वह गेलेन की चलाइ हुई एनाटोमीशरीर रचना- पढ़ना चाहता था। इसके लिए शवविच्छेदन अनिवार्य प्रक्रिया थी। लेकिन शवविच्छेदन के लिए यहाँ न उचित स्थान था न व्यवस्था। असंतुष्ट वेसेलिअस ने खुद शवविच्छेदन करने की ठानी। वे कब्रिस्तान गये वहां अपराधियों का गले से लटका कर फांसी दी जाती थी और उन्हे लटका छोड दिया जाता था। वेसेलिअस इन मुर्दो को ले जाते और फिर कालेज के कमरे में बैठ कर उनका विच्छेदन करते और उनको चित्रित करते। उन्होंने हडिडयां, मांसपेशियां, धमनियां, शिरों, लिम्फवाहरनयां, नर्वज आदि का विधिवत अध्ययन किया और उनके चित्र और नक्शे बनाये। उन्हे रक्त वाहनियों में लाल रक्त, लिम्फ वाहनियो सफेद तरल और पित्त की थेली में पीला पित्त मिला लेकिन उनको गेलेन द्वारा प्रतिपादित काला पित्त कहीं नहीं मिला। वे गेलेन के भक्त थे अतरू उन्होंने इस बारे में गेलेन का नखंडन कियान इस बारे कुछ लिखा।

1793 में लंडन के मैथ्यू बेली ने रोग से विकृत हुए अंगों का विच्छेदन कर किताब लिखी। जहां वेसेलिअसने नॉर्मल एनाटोमी - सामान्य शरीर रचना - का अध्ययन और चित्रण किया था वहीं बेली ने पेथोलॉजिकल एनाटोमी - विकृत संरचना - का अध्ययन और चित्रण। उन्होंने फेफड़े, आमाशय, वृषण आदि अनेक कैंसर का विच्छेदन-अध्ययन किया। उन्हे उनमें कहीं भी घनीभूत हुआ काला पित्त नहीं मिला। इसका मतलब था काला पित्त जैसा कोई द्रव शरीर में नही होता। अतः काले पित्त से कैंसर होने की परिकल्पना गलत सिद्ध हुई। कैंसर होने का कारण कुछ और ही था।

बाहरी कैंसर कारक तत्व परिकल्पना-सोमेटिक म्यूटेशन हाइपोथिसिस :- 1920 में कैंसर का होना बाहरी कैंसर कारक तत्वों के कुप्रभाव से ही होना माना जाता था। रेडियम से मेरी क्यूरी को रक्त कैंसर हुआ था। अठारवी सदी के अंत में परसीवल्ल पोट के कार्य ने यह सिद्ध कर दिया था कि चिमनी की कालिख साफ करने वाले बच्चों में फोते का कैंसर चिमनी की कालिख में निहित कैंसर कारक तत्वों के प्रभाव से होता है। बाहरी तत्वों-चिमनी की कालिख, रेडियम, ओर्गेनिक केमिकल, रंजक-के कैंसर कारक होने के साक्ष्य सामने आये। कैंसर आंतरिक विकार से नहीं बाहरी कैंसर कारक तत्वों के प्रभाव से होता है तो उसे रोका भी जा सकता है। लेकिन सवाल यह था कि कालिख, रसायन, रेडियम, इतने विभिन्न प्रकार के तत्व सभी कैंसर करते कैसे हैं? वैज्ञानिको ने इसके लिए नई

परिकल्पना, सोमेटिक म्यूटेशन हाइपोथिसिस, प्रतिपादित की। इस परिकल्पना के अनुसार कैंसर कारक सभी बाहरी तत्व शरीर की साधारण कोशिका की आंतरिक जीन संरचना में ऐसे विकार (म्यूटेशन) करते हैं कि साधारण कोशिका कैंसर कोशिका में परिवर्तित हो जाती है। हर प्रकार का कैंसर सोमेटिक म्यूटेशन से विकृत हुई कैंसर कोशिका से जन्मता है।

वाईरल हाइपोथिसिस-विषाणु जनित कैंसर परिकल्पना :- जब पक्षियों और जानवरों में वाइरस से कैंसर होना पाया गया तो बाहरी तत्वों से सोमेटिक म्यूटेशन से कैंसर होने की परिकल्पना को बड़ा झटका लगा।

वाइरस से कैंसरहोने कामतलब था एक कारण, एक रोग। हर प्रकार के कैंसर का एक ही कारण, वायरस।

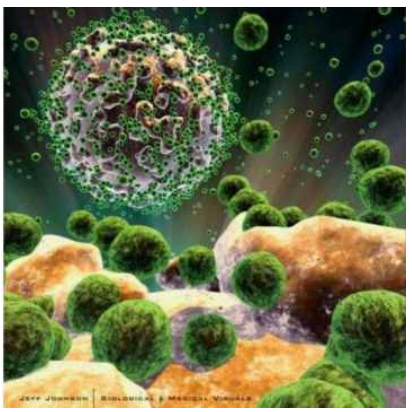

अनुसंधान के लिए करोड़ों खर्च किए गये। हर कैंसर की गांठ से वायरस को अलग करने की चेष्टा की गई। लेकिन वायरस होते तो मिलते।

कुछ मानव कैंसर में विषाणु अवश्य चिन्हित हुए। केवल विशेष प्रकार के कैंसर ही विषाणु जनित थे। अधिकांश में उन तंतुओं में कैंसर हुआ जो लम्बे समय से विषाणु संक्रमित थे। जैसे एप्सटन बार वायरस सेगले की ग्रंथियो का कैंसर हेपेटाइटिस बी और सी वायरस से लिवर का कैंसर और पेपिलोमा वायरस से गर्भाशयग्रीवा का कैंसर। तब वायरस को भी अन्य कैंसर कारक तत्वों की तरह एक माना गया। दीर्घकालिक विषाणु जनित शोथ (इनफलेमेशन) से कैंसर होता है। शोथ प्रक्रिया में रत कोशिकायें ही विकृत हो कर कैंसर हो जाती है। वायरस कैंसर का एक मात्र कारण नहीं थे।

जीन म्यूटेशन हाइपोथिसिस- जीन विकृति परिकल्पना :- शरीर की हर कोशिका (रक्त के लाल कणों को छोड़ कर) के अन्दर एक केंन्द्रक होता है। इस केन्द्रक के

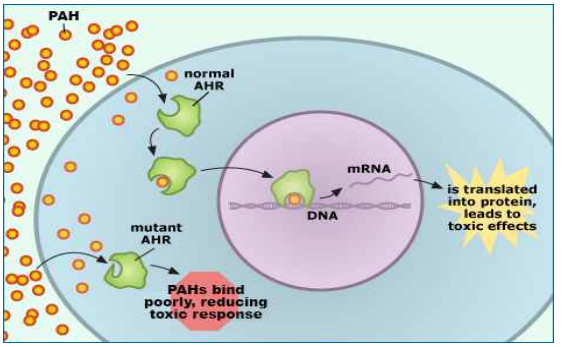

गुणसूत्रों पर स्थित जीन द्वारा ही कोशिका की सारी जैविक प्रक्रियों संचालित होती हैं। हर जीन, जो एक विशिष्ट डी. एन.ए.योगिक का बना होता है, एक विशिष्ट प्रकार की प्रोटीन बनाता है। जीन निर्मित यह प्रोटीन कोशिका की विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं को संचालित और नियंत्रित करती हैं। इनमें से कुछ जीन, विभाजित होने वाली कोशिकाओं में, विभाजन के लिए आवश्यक संवर्धन प्रक्रिया को संचालित करते है। विभाजनको उचित समय पर रोकने और विभाजित कोशिका को प्रायोजित लक्ष्य कर्म के लिए नियोजित करते हैं। शरीर की उन कोशिकाओं में जो अब विभाजित नहीं होती,जैसे मस्तिष्क की, मांसपेशियों की आदि, उनमें विभाजन को प्रेरित, नियंत्रित और नियमित करने वाले जीन सुशुप्त अवस्था में होते है - संवर्धन प्रेरक और संवर्द्धन रोधक दोनो प्रकार के जीन। कैंसर कारक तत्वों के प्रभाव से कोशिका के इन जीन में विकृतियां आ जाती है। तब यह जीन कैंसर कारक जीन बन जाते हैं। स्थाई कोशिका विभाजित होने लगती है और विभाजित होने वाली कोशिका में विभाजन पर से नियंत्रण खत्म हो जाता है।

सामान्य जीन के म्यूटेशन से विकृत हो कर कैंसर कारक जीन में परिवर्तन होने की परिकल्पना ही आज की मान्य कैंसर कारक परिकल्पना है। किसी भी तत्व को कैंसर कारक मानने से पहले, प्रयोगो से यह सिद्ध करना होता है कि तत्व कोशिका में म्यूटेशन कर सकता है। साधारण जैविक प्रयोगशाला में संभव, ऐम्स टैस्ट, इसकी एक सरल विधि है। किस प्रकार के कैंसर में कौन-कौनसे जीन में क्या

क्या विकृति होती है और उससे कोशिका की कौनसी रासायनिक प्रक्रिया प्रेरित या बाधित होती है,आज यह भी पहचानी जा सकती है। कैंसर की लक्ष्य परक टार्गेट थेरेपी का आधार यही है।

स्टेम सैल हाइपोथिसिस-स्टेम सैल परिकल्पना :- निषेचन (फर्टिलाइजेशन) के बाद युग्म (फर्टिलाइज्ड ओवम) के विभाजन से बनने वाली प्रथम कुछ कोशिका इस मायने में टोटीपोटेन्ट (सर्वसम) होती हैं कि अगर उनको अलग किया जाय तो प्रत्येक ऐसी आदि कोशिका से पूरा भ्रूण विकसित हो सकता है। तदोपरांत विभाजन से यह कोशिका बहुसक्षम या बहुउद्देशीय इस मायने में हो ती है कि इनसे पूरा भ्रूण तो नहीं, एक अंग या एक ऊतक अवश्य बन सकता है। चरणबद्ध विभाजन से आखिर में यह क्षमता एकउद्देशीय ही रह जाती है और उस कोशिका से मात्र एक ही प्रकार की कोशिकायें बन सकती है। उत्पति की इस प्रक्रिया को डिफरेन्सियेशन कहते है। पूर्ण विकसित मानव शरीर में ऐसी कुछ बहुसक्षम या बहुउद्देशीय कोशिकायें होती हैं। इन्हें स्टेम सैल कहते हैं। यह कई प्रकार की कोशिकाओं को जन्म देने वाली पूर्वज या आदि कोशिकायें होती है। जैसे अस्थि मज्जा में स्थित स्टेम कोशिकों जो रक्त की सभी लाल, सफेद और बिंबाणु कोशिकाओं का जन्म देती है। जिससे कि यह सिलसिला जीवन प्रयत्न चलता रहे, ये कोशिकायें अपना पुनःनिर्माण कर अपनी जैसी कोशिका भी बना सकती है।

स्टेम कोशिकायें शरीर के अन्य भागों में भी होती हैं। यह सुशुप्त अवस्था में रहती है और उचित संकेत या उद्दीपक (स्टिमुलस) आने पर ही सचेत होती हैं। कैंसर के स्टेम सैल की परिकल्पना के अनुसार कैंसर का उद्गम इन स्टेम सैल में हुए कैंसर कारक म्यूटेशन से होता है। ऐसा

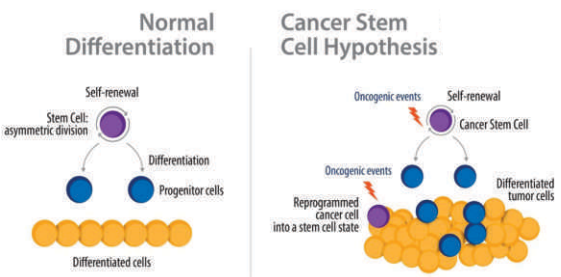

म्यूटेशन होने पर यह अपने परिवेश से कट कर शरीर में जहां भी जायेगी कैंसर को जन्म देगी। बहुउद्देशीय स्टेम सैल विभिन्न प्रकार के कैंसर को जन्म दे सकता है।

कैंसर होने का एक कारण नहीं है। न ही सभी कैंसर होने की प्रक्रिया एक जैसी। इसको ना समझे बिना बचाव या उपचार को नहीं समझा जा सकता।

– 15, विजय नगर, डी-ब्लॉक, मालवीय नगर, जयपुर।

पृष्ठ सं. 8 का शेष

जाएं, जैसे ध्यान लगाना, योग करना, घूमना, श्वांस व्यायाम करना या गाने सुनना।' सवाल यह है कि इन सबसे हमें कैसे फायदा हो सकता है? इसे ध्यान लगाने के उदाहरण से समझा जा सकता है। जैसे, यह क्रिया दिल की धड़कन और सांस की गति नियंत्रित करती है। इतना ही नहीं, ध्यान लगाने से न सिर्फ शरीर की ऑक्सीजन की खपत दर कम हो जाती है, बल्कि खून में लैक्टिक एसिड भी कम होता है। तनाव के खिलाफ जंग में बातचीत व सक्रिय होकर सुनना भी एक प्रमुख हथियार है। डॉ तिल्वे की मानें, तो पारस्परिक संबंधों में तनाव को रोकने या इससे बचने के लिए एक लंबा रास्ता यह भी है कि आप कोई धारणा बना लेने की बजाय सामने वाले की बातों को सुनना पसंद कीजिए। भले ही आप कितने भी अंतर्मुखी क्यों न हों, आपको एक ऐसे शख्स की खोज जरूर करनी चाहिए, जिस पर आप विश्वास कर सकें और उसे खुलकर अपनी दिल की बात कह सकें।'

कहना गलत नहीं होगा कि जिस तरह आर्थिक आजादी तनाव से छुटकारा दिलाती है, उसी तरह मददगार दोस्त व परिजन भी तनाव कम करने में काफी सहायक होते हैं। और अगर तनाव से निपटने के लिए आप शराब या तंबाकू को आशा की नजर से देखते हैं, तो यकीन मानिए, आपने सबसे गलत रास्ता चुना है। ऐसा करना न सिर्फ आपको नशे का शिकार बना सकता है, बल्कि अवसाद व आत्महत्या का खतरा भी बढ़ा सकता है। डॉ तिल्वे की बातो पर गौर करें, तो 'तनाव को नजरअंदाज करने या यह सोचने भर से कि यह दूर हो जाएगा, बेहतर यही है कि आप यह पता लगाएं कि तनाव की वजह क्या है और फिर उसे दूर या कम करने का उपाय करें।'

नवजात शिशु में पीलिया हो जाने पर न घबराएँ

- डा. अरविन्द दुबे
एम.डी. (पीडियाट्रिक्स)

किसी नवजात शिशु की त्वचा और आंखों के पीले हो जाने को नवजात शिशु की पीलिया कहते हैं। इसमें आंखे पहले पीली दिखतीं हैं फिर चेहरा और फिर धीरे-धीरे सारे शरीर की खाल पीली दिखने लगती है।

क्यों होती है नवजात शिशु में पीलिया?

एक प्रकार के वर्णक या पिगमेंट बिलीरूबिन, जो सूक्ष्म मात्रा में हर व्यक्ति के खून में पाया जाता है, के खाल में जमा होने के कारण खाल पीली दिखने लगती है। जब किसी कारण से यह बिलीरूबिन शरीर में ज्यादा मात्रा में बनने लगाता है तो इसकी अधिक मात्रा खून में पहुंचने लगती है जो कुछ समय के लिए शरीर के भिन्न ऊतकों जैसे खाल या श्लेष्मा झिल्लिय मे जमा हो जाती है और वे पीले दिखने लगते हैं।

कहाँ से आता है यह बिलीरूबिन?

एक निश्चित समय के बाद खून की पुरानी पड़ चुकी लाल रक्त कोशिकाएं शरीर द्वारा नष्ट कर दी जाती हैं। इनमें एक खास पदार्थ 'हीमोग्लोबिन' पाया जाता है। इसकी वजह से ही हमारे खून का रंग लाल होता है। इन नष्ट होती लाल रक्त कोशिकाओं का हीमोग्लोबिन जब टूटता है तो इससे बिलीरूबिन बनता है।

क्यों बनता है नवजात शिशुओं में अधिक बिलीरूबिन?

नवजात शिशुओं में लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या बहुत अधिक होती है जिससे उनका हीमोग्लोबिन प्रतिशत 23 ग्राम तक सकता है। इसके अलावा नवजात शिशुओं की इन लाल रक्त कोशिकाओं का जीवनकाल भी सामान्य व्यक्ति की लाल रक्त कोशिकाओं से कम होता है। यह सब गर्भाशय के वातावरण के लिए तो उपयुक्त होता है पर सामान्य वातावरण में आते ही ये अतिरिक्त रक्त कोशिकाएं तेजी से विखण्डित होना शुरू होती हैं। फलतः बिलीरूबिन की अधिक मात्रा बनती है। नवजात शिशु का जिगर इतना पुष्ट नही होता कि वह बिलीरूबिन की इस अधिक मात्रा को उसी तेजी से निपटा सके जिस तेजी से यह बन रही है। इसलिए नवजात शिशु की पीलिया अधिकतर मामलों में कोई बीमारी नहीं वरन बिलीरूबिन के उत्पादन और निपटाने की क्षमता में सामंजस्य न होना भर है।

क्या करें?

घर मे पैदा होने वाले या अस्पताल से जल्दी घर आ गए नवजात शिशु के रंग पर ध्यान रखें। उसे हर रोज सूरज की रोशनी मे ले जाकर देखें। जब भी आपको उसका रंग पीला लगे तुरन्त डाक्टर को सूचना दें। निगेटिव आर-एच रक्त वर्ग वाली माताओं या उन माताओं, जिनके पहले बच्चों को पीलिया हो चुका है, का प्रसव अस्पताल में डाक्टर की देखरेख में ही कराएं।

एक बार पीलिया होने पर खून की जांच द्वारा बिलीरूबिन के स्तर का निर्धारण करना आवश्यक होता है।

उपचार

सामान्य पीलिया में तो शिशु को किसी उपचार की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। सिर्फ रक्त मे बिलीरूबिन के स्तर पर नज़र रखनी होती है और निरन्तर एक बाल रोग विशेषज्ञ से संपर्क बनाए रखना होता है। जब रक्त में बिलीरूबिन का स्तर बढ़ता जाए या यह लगे कि पीलिया असमान्य प्रकार का है तो इसके उपचार की आवश्यकता

पड़ती है। ये कई प्रकार से किया जाता है।

प्रकाश चिकित्सा (फोटोथेरेपी) मशीन

बच्चे को इसके नीचे नंगा करके करीब पचास सेमी नीचे लिटाते हैं। उसके अ ंखों को तेज रोशनी से बचाने के लिए आंख पर मोटा काला कपड़ा बांधा जाता हैं। शिशु को चौबीसो घंटे यहां तक कि दूध पिलाते समय भी इस फोटोथेरेपी में रखा जाता है।

क्या प्रकाश चिकित्सा के कुछ नुकसान भी हैं?

- नंगे लेटे शिशु पर पड़ने वाले प्रकाश से उसकी पतली त्वचा से पानी धीरे-धीरे उड़ता रहता है।
- कभी कभी फोटोथेरेपी शुरू करते ही बच्चे को पतले और हरे दस्त होने लगते हैं जो कि बिलीरूबिन के आंत में पहुंचने के कारण होते है। ये दस्त फोटोथेरेपी बन्द करने के कुछ समय बाद अपने आप ही बंद हो जाते हैं।
- फोटोथेरेपी की तेज रोशनी शिशु के आंख के परदे (रेटिना) को नुकसान पहुंचा सकती हैं अतः फोटोथेरेपी के समय आंखों पर काले कपड़े का मोटा आई पैड हमेशा बंधा रहना चाहिए।
- प्रकाश शिशु के आंतरिक जननांगों पर बुरा असर न डाले इसलिए उन्हें डायपर पहना कर ही फोटोथेरेपी में लिटाना चाहिए।
- कभी कभी फोटोथेरेपी कोशिका के अन्दर पाए जाने वाले गुणसूत्रों या क्रोमोजोम्स का विखण्डन भी देखने को मिल सकता है। पर इस का कोई खास बुरा असर आमतौर पर देखने को नहीं मिलता है।
- शिशु की त्वचा जल सकती है।
- इसके अतिरिक्त बिजली का झटका लगने व ट्यूब लाइट के टूट कर शिशु के ऊपर गिरने की दुर्घटनाएं भी यदा-कदा सुनने को मिलती है।

पर ये सारी दुर्घटनाएं उचित सावधानी बरतने से बचाई जा सकती हैं।

एक्स्चेन्ज ब्लड ट्रान्सफ्यूजन

जब रक्त में बिलीरूबिन का स्तर इतना अधिक बढ़ जाए कि उसके मस्तिष्क में जाकर वहां नुकसान पहुंचाने का खतरा पैदा हो जाए तो ऐसे बच्चों का खून सामान्य खून से बदल दिया जाता है जिसे एक्सचेंज ब्लड ट्रांसफ्यूजन कहते हैं। जहां ये ट्रान्सफ्यूजन खचऍला है वहीं खतरनाक भी। पर विशेषज्ञों के हाथ में इसमें शिशु के मृत्यु की संभावनाएं तीन से 5 प्रति हजार से अधिक नहीं होती।

गंभीर या खतरनाक दिमागी पीलिया (कनिक्टेरस)

कुछ शिशुओं रक्त में बिलीरूबिन की मात्रा काफी बढ़ सकती है तो बिलीरूबिन मस्तिष्क के अंदर प्रवेश कर उसके कई भागों को स्थाई रूप से नुकसान पहुंचा देता है। इस को ही कनिक्टेरस कहते हैं। इस में शिशुओं का मानसिक विकास बुरी तरह प्रभावित होता है। उनको गर्दन सम्भालना, बैठना, खड़े होना, चलना, बोलना आदि सीखने में सामान्य से बहुत ज्यादा समय लगता है। कभी-कभी तो लम्बी आयु तक वे न बैठ पाते हैं, न चल पाते हैं, न चीजें पकड़ पाते हैं और न खुद खाना ही खा पाते हैं। कभी-कभी तो वे न पढने लायक हो पाते हैं न कुछ सीखने लायक। उनकी सुनने और देखने की क्षमता भी बुरी तरह प्रभावित होती है।

रक्त में बिलीरूबिन का स्तर जब बीस मिलीग्राम प्रति डेसीलीटर से कम होता है तो सामान्य परिपक्व शिशु मे कर्निक्टेरस होने की सम्भावनाएं नगण्य होती है। पर जब ये स्तर 30 मिलीग्राम प्रति डेसीलीटर से अधिक होता है तो कनिक्टेरस होने की सम्भावनाएं बहुत अधिक (करीब करीब शत-प्रतिशत) होतीं हैं।

546/1284, आकर्ष हास्पिटल, निकट बैंक ऑफ बडौदा, बालागंज चौराहा, हरदोई रोड, लखनऊ-226

कैसे देखते हैं हम?

– डा. प्रेमचंद्र स्वर्णकार
एम.डी.

जब प्रकाश की किरणें पारदर्शी कॉर्निया या स्वच्छ मंडल से होते हुए एक्यूअस ह्यूमर या नेत्रोद एवं लेंस से गुजरती हैं तो वे कुछ मात्रा में झुक जाती हैं। इसे 'रिफरेक्सन' (Refraction) या 'अपवर्तन' कहते हैं। इसके द्वारा रोशनी के बड़े क्षेत्र से आने वाली किरणें दृष्टिपटल के छोटे छिद्र पर केंद्रित होती हैं। प्रकाश की समानांतर किरणें जब आँख के उत्तल लेंस से टकराती हैं तो दृष्टिपटल के केंद्रबिंदु की तरफ झुकती हैं। यदि वस्तु सात मीटर से कम दूरी पर स्थित है तो लेंस की गोलाई बढ़ाना आवश्यक होता है ताकि रेटीना पर उसकी प्रतिछाया केंद्रित हो सके, इसे 'समायोजन' कहते हैं। दूर दृष्टि लेंस की सामान्य अवस्था में भी हो सकती है। कुछ व्यक्ति सामान्यतः निकट दृष्टिदोष से प्रभावित होते हैं। यह इस कारण होता है कि इनकी आँखें ज्यादा लंबी रहती हैं। इससे लेंस सामान्य की अपेक्षा दृष्टिपटल या रेटीना से अधिक दूर रहता है तथा केंद्रबिंदु के सामने स्थित होता है। इस मामले में समीपस्थ वस्तु आराम की अवस्था में आँख के चपटे लेंस (Concave Lens) द्वारा देखी जा सकती है। यह दूर देखने के लिए आवश्यक होता है, ताकि केंद्रबिंदु को पीछे की ओर बढ़ाया जा सके।

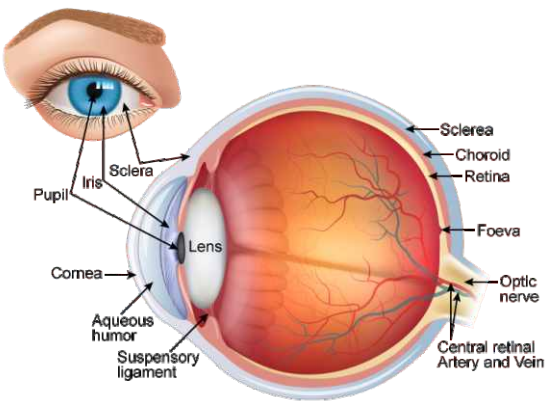

कुछ व्यक्ति सामान्यतः दूर दृष्टिदोष (Long Sightness) से प्रभावित रहते हैं, क्योंकि उनकी आँखें बहुत छोटी होती हैं। अतः रेटीना लेंस के समीप और केंद्रबिंदु रेटीना के पीछे स्थित रहता है। इसमें दूर की वस्तुएँ मोटे, अधिक मुड़े हुए या उभरे हुए लेंस (Conves Lens), जिसका उपयोग निकट दृष्टि के लिए किया जाता है, के द्वारा देखी जा सकती हैं।

नेत्र गुहा में आँख छह पेशियों द्वारा घूमती है। ये पेशियाँ छोटे फीते जैसी होती हैं और नेत्रों की बाह्य दीवारों से जुड़ी रहती हैं। ये पेशियाँ आँखों पर खिंचाव डालती हैं और उनकी हलचल को समन्वित करती हैं। इस प्रकार दोनों आँखें एक वस्तु पर केंद्रित होती हैं। एक या एक से अधिक पेशियों के कमजोर होने पर आँख घूम जाएगी। ऐसी स्थिति को सामान्यतः 'भेंगापन' (Squint) कहते हैं।

स्पष्ट है कि दृष्टि की क्रियाविधि काफी जटिल प्रक्रिया है, अतः इसे आसानी से समझने के लिए हम इस प्रक्रिया को निम्न भागों में बाँट देते हैं, जिससे इसे समझना काफी आसान हो जाएगा-

1. कैमरे तथा आँख की कार्यविधि में समानता-
   - आँखों के अंगों तथा कैमरे के भागों में समानता
   - रेटीना और प्रकाश सुग्राही प्लेट में समानता
2. केंद्रीकरण या फोकसिंग
3. दृष्टि मुद्राओं का बनना
4. प्रकाश किरणों का परावर्तन या अपवर्तन
5. आँखें कुछ भौतिक नियमों का पालन करती हैं
6. प्रकाश का विभिन्न माध्यमों से गुजरना
7. दूर तथा पास की वस्तुओं को देखना
8. रेटीना पर छोटा और उल्टा प्रतिबिंब बनना
9. शंकु तथा शलाकाओं के कार्य

इसे निम्न दो भागों में बाँटते हैं-

- शंकुओं के कार्य और रंग की क्रियाविधि
- प्रकाश एवं छाया की क्रियाविधि में रॉड्स का कार्य

इसे पुनः निम्न भागों में बाँटते हैं -

- प्रकाश एवं छाया के प्रत्यक्षीकरण का सफल होना
- प्रकाश एवं छाया के प्रत्यक्षीकरण का असफल होना।

10. रोडोप्सिन का कार्य
11. बाह्य और अंतः नाभिकीय स्तर का कार्यात्मक कड़ी के रूप में कार्य करना
12. रंजक स्तर का कार्य
13. मैक्युला ल्यूटिया तथा केंद्र गतिका
14. दृष्टि तंत्रिका, उसकी कियेज्मा तथा दृष्टिपथ
15. वस्तुओं का सीधा प्रतिबिंब बनना या देखना

उपर्युक्त सभी भागों का वर्णन क्रमानुसार निम्नलिखित है -

कैमरे तथा आँख की कार्यविधि में समानता- चूँकि आँख और कैमरा रचना की दृष्टि से लगभग समान होते हैं इसलिए उनकी कार्यविधि में भी कुछ-कुछ समानताएँ होती है। इसकी कार्यविधि की समानताओं को हम निम्न बिंदुओं द्वारा बहुत आसानी से समझ सकते हैं-

(अ) आँखों के अंगों तथा कैमरे के भागों में समानता- कैमरे में लगा हुआ शटर आँखों की पलकों (Eyelids) से समानता रखता है, और वही कार्य करता है, जो आँखों में पलकें करती हैं। आँखों में पाया जाने वाला या कॉर्निया स्वच्छ मंडल प्रकाश के लिए कैमरे की खिड़की की तरह कार्य करता है। पुतली का परदा भीतर प्रवेश करने वाले प्रकाश की मात्रा को नियंत्रित करता है। कैमरे का लेंस व आँखों का लेंस दोनों ही सर्वप्रथम सामने आते हैं। दोनों में लेंस से प्रकाश की किरणें फोकस होती हैं। मध्य पटल (Choroids) कैमरा प्रकाशरोधक डिब्बे की ब्लैक वॉल की तरह कार्य करता है, जिससे नेत्र गोलक, अक्षीय गोलक (Eye wall) के बीच में एक अंधकारमय कक्ष तैयार होता है और प्रकाश के प्रति संवेदनशील फोटोग्राफिक प्लेट रेटीना के समान कार्य करती है।

(ब) रेटीना और प्रकाश सुग्राही प्लेट में समानता- जैसा कि हम जानते हैं कि कैमरे के सामने जो वस्तु रहती है, कैमरे के दृष्टिपटल पर उसका उल्टा प्रतिबिंब बनता है, ठीक उसी प्रकार से हमारी आँखें भी कार्य करती हैं। आँखों में दृष्टिपटल या रेटीना पर यह कार्य होता है। वस्तु से निकलने वाली प्रकाश किरणें नेत्रोद द्रव, लेंस और नेत्रोद काचाभ से गुजरते हुए रेटीना या दृष्टिपटल पर पड़ती हैं। ये तीनों एक अपवर्तन माध्यम का कार्य करती हैं। लेंस तथा स्वच्छ पटल, प्रकाश की समानांतर किरणों को रेटीना पर केंद्रिभूत करने में मदद करते हैं।

केंद्रीकरण (Focusing)- कैमरे में लेंस और फोकस बिंदु की दूरी निश्चित होती है और लेंस को आगे-पीछे खिसकाकर प्लेट पर वस्तु का स्पष्ट प्रतिबिंब डाला जाता है, अर्थात् जिस प्रकार इसमें लेंस को आगे-पीछे खिसकाया जाता है, उसी प्रकार आँखों में भी यह क्रिया होती है। आँखों में लेंस तथा रेटीना की दूरी निश्चित होती है। आँखों में लेंस की फोकस दूरी को मांसपेशियों की संकुचन क्रिया द्वारा बदलकर वस्तु के स्पष्ट प्रतिबिंव को रेटीना पर प्राप्त किया जाता है।

दृष्टि मुद्राओं का बनना- दृष्टि तंत्रिका द्वारा प्रतिबिंब की विस्तृत सूचना प्रमस्तिष्क (Cerebram) में पहुँचती है, जहाँ यह चेतना में विकसित होती है। इस प्रकार दृष्टि तंत्रिका द्वारा संवेदना मस्तिष्क के दृष्टि केंद्र में पहुँचती है, फलस्वरूप मस्तिष्क को देखने की अनुभूति होती है। मस्तिष्क उल्टे प्रतिबिंब को कैसे स्वयं सीधा करके समझ लेता है। अर्थात् आँखें केवल देखने का माध्यम है, परंतु देखने का कार्य वास्तविक रूप से मस्तिष्क ही करता है। मस्तिष्क के दृष्टि केंद्र में ही प्रकाश किरणों द्वारा लाई गई छवि का विश्लेषण होता है तथा हमें उस वस्तु के स्वरूप का ज्ञान होता है। प्रकाश किरणें सबसे पहले कॉर्निया पर पड़ती हैं। इसके पश्चात नेत्रोद द्रव से गुजरते हए लेंस, काचाभ द्रव और अंत में रेटीना पर पड़ती हैं। इस तरह पूरी आँख कैमरे की तरह कार्य करती है।

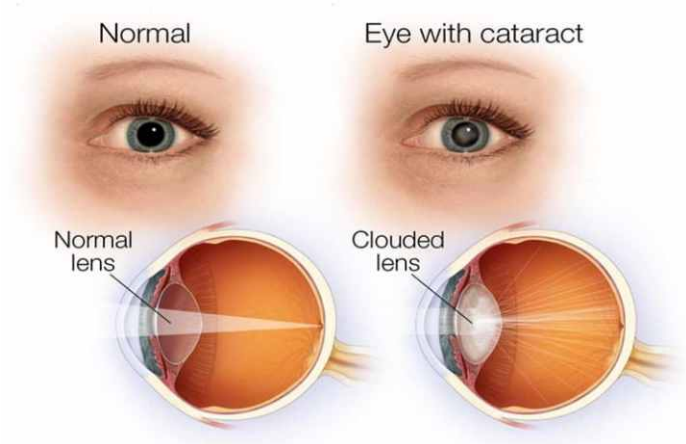

प्रकाश किरणों का परावर्तन या अपवर्तन- प्रकाश की किरणें जब अपने मार्ग में चलती हैं तो भौतिक नियमों का पालन करते हुए आगे बढ़ती हैं। सर्वप्रथम पड़ने वाले कुछ प्रकाश का भाग परावर्तित होता है। इसके पश्चात् शेष प्रकाश आगे की ओर बढ़ता है। प्रकाश किरणों का परावर्तन किसी तल या ठोस समतल सतह से होता है। एक माध्यम से दूसरे माध्यम में जाने पर प्रकाश किरणों का अपवर्तन (Reflection) हो जाता है। इसका तात्पर्य है कि इन रेखाओं का दोनों माध्यमों के संगम स्थल पर मार्ग बदल जाता है। मार्ग में जितने भी मुड़े हुए तल होते हैं, उन पर भी किरणों का मार्ग बदलता है। लेंस की उत्तलता (Convexcity) अथवा अवतलता (Concavity) को पार करके प्रकाश किरणें लेंस के दूसरी ओर पहुँचकर एक-दूसरे के समीप होकर एक केंद्र पर मिल जाती हैं, जिसको 'अभिबिंदुता' (Convergence) कहते हैं। किसी-किसी अवस्था में ये एक-दूसरे से दूर भी होती हैं। इसको 'उपबिंदुता' (Divergance) कहते हैं। प्रत्येक मुड़े हुए तल का एक अक्ष होता है, इसी अक्ष से होकर किरण की रेखाएँ सीधी जाती हैं, परंतु ऐसी रेखाएँ जो अक्ष के ऊपर या नीचे उसके समानांतर मुड़े हुए तल पर टकराती हैं उनका परावर्तन होता है और वे तल के दूसरी ओर मुड़कर कही पर अक्ष से मिल जाती हैं। यह स्थान 'किरण केंद्र' या 'फोकस' कहलाता है। प्रत्येक लेंस में आगे और पीछे एक फोकस होता है। इन्हीं फोकसों पर प्रतिबिंब बनता है। दृश्य या छवि को केंद्रित करने के लिए ऊपर बताई गई विधि के अनुसार मांसपेशियों की सहायता से लेंस को इधर-उधर करके, फोकस दूरी निश्चित कर प्रतिबिंब प्राप्त किया जाता है।

आँखें कुछ भौतिक नियमों का पालन करती हैं - संपूर्ण मार्ग को पार करने में प्रकाश की किरणें उन्हीं सभी प्रकाश के साधारण भौतिक नियमों का पालन करती हैं, जो सामान्यतः बाहरी वातावरण में प्रकाश द्वारा पालन किए जाते हैं अर्थात् प्रकाश भौतिक नियमों में बँधकर आँख के अंदर प्रवेश करता है और उन्हीं नियमों का पालन करते हुए संपूर्ण मार्ग को तय करता है। वह अपने स्वयं के गुणों को बरकरार रखते हुए कार्य करता है। प्रकाश के लिए कुछ सामान्य भौतिक नियम निम्न होते हैं-

1. प्रकाश की किरणें सरल रेखा में गमन करती हैं।
2. प्रकाश की किरणें परावर्तन तथा अपवर्तन के नियमों का पालन करती हैं।
3. प्रकाश की किरणे ध्वनि की अपेक्षा तीव्र वेग से चलती हैं। नेत्रों में इन्हीं भौतिक नियमों का पालन होता है, परंतु यहाँ पर यह सब परिवर्तन अपने आप होते हैं। नेत्र में ऐसे कई स्थान हैं जो मुड़े हुए हैं, उन सभी स्थानों पर किरण रेखाओं को मुड़ना पड़ता है। स्वच्छ मंडल या कॉर्निया का पृष्ठ उत्तल होता है। इसके बाद लेंस जिसके दोनों पृष्ठ अवतल होते हैं। इसके बाद नेत्र का काचाभ द्रव है। इन सब अंगों को पार करके किरणें दृष्टि पटल पर पहुँचती हैं। दृष्टिपटल पर चित्र उल्टा बनता है। परंतु वस्तुएँ उल्टी दिखाई नहीं देतीं, क्योंकि इस उल्टे बिंब को सीधा करने का कार्य मस्तिष्क करता है।

प्रकाश का विभिन्न माध्यमों से गुजरना-नेत्रों के द्वारा संसार की विभिन्न वस्तुओं को देखा जा सकता है, दृष्टि क्षेत्र में आने वाली विभिन्न वस्तुओं से प्रकाश, नेत्र में परावर्तित हो जाता है। प्रकाश की किरणें 16000 मील अथवा तीन लाख कि.मी. प्रति सेकेंड की गति से चलती हैं। प्रकाश की किरणें जब एक घनत्व वाले माध्यम से भिन्न घनत्व वाले माध्यम से होकर गुजरती हैं, तो वे मुड़ जाती हैं। नेत्र में प्रकाश के रेटीना पर केंद्रित होने पर इस सिद्धांत का

उपयोग होता है। रेटीना पर पहुँचने के पूर्व प्रकाश की किरणें नेत्रों के कई माध्यमों (अर्थात् नेत्र श्लेष्मा, स्वच्छ मंडल या कॉर्निया, नेत्रोद, लेंस, काचाभ द्रव) से होकर गुजरती हैं। लेंस के अतिरिक्त सभी माध्यम वायु के घनत्व से अधिक घनत्व वाले होते हैं और उनमें जल की अपवर्तनांक शक्ति की भाँति एक-सी अपवर्तनांक शक्ति होती है।

दूर तथा पास की वस्तुओं को देखना- नेत्र में लेंस ऐसी रचना होती है जिसकी अपवर्तनांक शक्ति स्वतः घटती बढ़ती रहती है। नेत्र में प्रवेश करने वाली सभी प्रकाश किरणों को रेटीना पर केंद्रित होने के लिए झुकने की आवश्यकता होती है। दूर की वस्तुओं को देखने के लिए उनसे आने वाले प्रकाश को अधिक अपवर्तन की आवश्यकता होती है। पास की वस्तुओं को देखने के लिए जैसे-जैसे कोई वस्तु पास आती जाती है, तो उसे देखने के लिए उससे आने वाले प्रकाश को अधिक अपवर्तन की आवश्यकता होती है। दूर की वस्तुओं को देखने के लिए सिलियरी पेशी शिथिल होकर लेंस से संलग्न तंतुओं के ऊपर अपने खिंचाव को बढ़ा देती है, जिससे लेंस अधिक पतला हो जाता है, अर्थात् उसकी उत्तलता कम हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप लेंस की अपवर्तक शक्ति भी कम हो जाती है। इसके विपरीत पास की वस्तुओं को देखने के लिए सिलियरी पेशी संकुचित हो जाती है और तंतुओं (Suspensory Ligament) पर इसका खिंचाव कम हो जाता है तथा लेंस की अग्रसतह आगे को निकल आती है, जिससे उसकी उत्तलता बढ़ जाती है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी अपवर्तन शक्ति भी बढ़ जाती है। पास की वस्तुएँ देखने से सिलियरी पेशी के निरंतर प्रयोग में आने से आँखें जल्दी थक जाती हैं।

रेटीना पर छोटा और उल्टा प्रतिबिंब बनना- प्रकाश की किरणें लेंस से अपवर्तित हो जाती हैं जैसा कि बतलाया गया है कि आँख की रेटीना कैमरे की प्रकाश सुग्राही प्लेट जैसी होती है। देखी जाने वाली वस्तुएँ रेटीना में प्रकाश सुग्राही प्लेट की भाँति छोटी तथा उल्टी प्रकट होती हैं। इस प्रकार रेटीना पर छोटा एवं उल्टा प्रतिबिंब बनता है।

शंकु एवं शलाकाओं के कार्य - शंकु और शलाकाएँ (Cones) प्रकाश सुग्राही (Photo Recepter) कोशिकाएँ

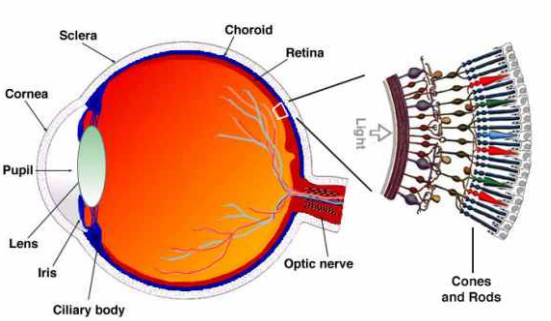

होती हैं। इनमें शंकु का आकार पिरामिड के आकार का तथा शलाकाओं का आकार बेलनाकार होता है। रॉड्स और कोन्स प्रकाश के प्रति संवेदनशील होते हैं। जब ये प्रकाश से उत्तेजित होते हैं तो उनसे उत्पन्न आवेगों को तंत्रिका कोष में भेजा जाता है। जहाँ से उनका संवहन दृष्टि नाड़ी द्वारा मस्तिष्क में होता है। इनके कार्य और उनकी कार्यविधियों को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत विस्तार से समझ सकते हैं-

शंकु के कार्य और रंग की क्रियाविधि- दृष्टिपटल के 'फोविया सेंट्रैलिस' नामक भाग में शंकुओं की संख्या सबसे अधिक होती है। यह वह भाग होता है जो दृष्टि की तीव्रता से संबंधित रहता है और जहाँ से दृष्टि के प्रतिबिंब की सभी सूक्ष्म एवं अतिसूक्ष्म जानकारियों का प्रत्यक्षीकरण होता है। मानव में इस स्थान पर केवल शंकु ही होते हैं। इस स्थान के कोन्स अन्य स्थान के कोन्स या रॉड्स से भिन्न और जुड़े हुए नहीं रहते हैं। इनसे रंग का बोध होता है। मानव दृष्टिपटल (रटीना) के अन्य सभी भागों में रॉडस और कोन्स मिश्रित रूप में रहते हैं। किंतु फोविया सेंटैलिस - से दूरी बढ़ने के साथ-साथ कोन्स की संख्या में कमी होती है, और जैसे-जैसे कोन्स कम होते जाते हैं, वैसे-वैसे उस स्थान पर रॉड्स की संख्या अधिक होती जाती है।

शंकु (Cones), जो कि रंगों की पहचान के लिए उत्तरदायी होते हैं तथा शलाकाएँ (रॉड्स), जो कि रंगों का विभेदीकरण नहीं कर पाती हैं, ये दोनों संपूर्ण रेटीना पर समान रूप से वितरित नहीं रहती हैं। प्रत्येक आँख में लगभग 700 मिलियन कोन्स एवं 100 मिलियन रॉड्स होते हैं। फोविया क्षेत्र में कोन्स घने रूप में स्थित होते हैं। वहाँ पर रॉड्स की संख्या बिलकुल नहीं रहती है तथा कोन्स की संख्या यहाँ अन्य जगह पाए जाने वाले कोन्स की अपेक्षा

स्पष्ट रहती है। रेटीना के किनारों पर कोन्स भी पाए जाते हैं। दृष्टिबिंब जो कि फोविया सेंट्रैलिस नामक स्थान पर बनता है। वहाँ 126 मिलियन अलग-अलग बिंदु बनते हैं। स्पष्ट और सुंदर प्रतिबिंब के लिए यह क्रिया उतनी ही आवश्यक है जैसे कि कागज पर चित्र छापते समय चित्र के असंख्य पृथक बिंदुओं को बाँटा जाता है। बिंदु जितने अधिक होते हैं, चित्र उतना ही सुंदर छपता है।

प्रकाश एवं छाया की क्रियाविधि में शलाकाओं का कार्य- इस क्रियाविधि को हम निम्न बिंदुओं के अंतर्गत बड़ी अच्छी तरह से समझ सकते हैं-

प्रकाश एवं छाया के प्रत्यक्षीकरण का सफल होन-शंकु एवं शलाकाओं का संबंध केवल प्रकाश एवं अँधेरे से ही रहता है। इनसे रंग की संवेदना नहीं होती है, परंतु ये प्रकाश के लिए अत्यधिक संवेदनशील होते हैं, यहाँ तक कि जब प्रकाश की तीव्रता कम रहती है तब भी इनकी संवेदनशीलता अधिक रहती है। शलाकाओं के माध्यम से ही हम कम प्रकाश में भी वस्तुओं को देख पाते हैं। कोन्स को उद्दीप्त या उत्तेजित होने के लिए अत्यधिक तीव्र प्रकाश होना बहुत जरूरी है। अर्थात् इसकी प्रभाव सीमा बहुत उच्च होती है। यही कारण है कि हल्की-सी प्रदीप्त वस्तु जैसे छोटे तारे हम आँख से सीधे कोण से नहीं देख पाते, परंतु हम यदि आँख को घुमाकर एक कोण से देखते हैं तो दिखाई दे जाता है, क्योंकि ऐसी स्थिति में ही प्रतिबिंब या इमेज, फोविया सेंट्रैलिस पर बनते हैं, जहाँ रॉड्स की सहायता से उन्हें देखा जा सकता है। अर्थात् रॉड्स कम प्रकाश में भी उत्तेजित हो जाती हैं और हम वस्तुओं को देख पाते हैं जबकि कोन्स अधिक प्रकाश में उत्तेजित होते हैं।

प्रकाश एवं छाया के प्रत्यक्षीकरण का असफल होना - कोन्स या शंकुओं का कम प्रकाश में सही ढंग से कार्य न कर पाना अर्थात् शीघ्रता से उत्तेजित न हो पाने के कारण तथा रॉड्स का रंगों से प्रत्यक्षीकरण न हो पाने के कारण हम रंगों को सही ढंग से नहीं देख पाते हैं और रंग और प्रकाश के प्रति अंधत्वता उत्पन्न हो जाती है। इसलिए ऐसी स्थिति में शाम के समय में अपने आसपास की सभी वस्तुएँ छायामयी, धुंधली-सी या सफेद-धूसर मिले-जुले रंग की या काली दिखाई देने लगती हैं। रॉड्स यद्यपि रंग के प्रति असंवेदनशील होते हैं, फिर भी यदि उनके सामने हरे, नीले और पीले रंग की वस्तुएँ आती है तो वे उत्तेजित हो जाती हैं, परंतु वस्तुएँ धूसर दिखाई देती हैं। लाल प्रकाश रॉड्स को बिलकुल भी उत्तेजित नहीं कर पाता है। अतः किसी प्रकार की दृष्टि उत्तेजना न होने पर वह रंग हमें केवल काला ही दिखाई देता है।

रोडोप्सिन का कार्य- 'रोडोप्सिन' नामक एक रसायन रहता है जो प्रकाश की उपस्थिति में विरंजित होकर पीले रंग का पदार्थ बन जाता है तथा और अधिक उद्भासन से यह विटामिन 'ए' और प्रोटीन में बदल जाता है। रोडोप्सिन का प्रकाश की उपस्थिति में उत्तेजित होना 'उद्भासन' कहलाता है। उपरोक्त बाद वाले उत्पादन रंगहीन होते हैं। उनके बारे में ऐसा अनुमान है कि ये प्रकाश से ही विरंजित होते हैं। अंधकार में विटामिन 'ए' तथा प्रोटीन विजुअल परपल या नीललोहित में बदलता है। नीललोहित तीव्र प्रकाश से विरंजित हो जाता है। इस प्रकार रासायनिक परिवर्तन के कारण ही रॉड्स दृष्टि संग्राहक के रूप में कार्य करते हैं।

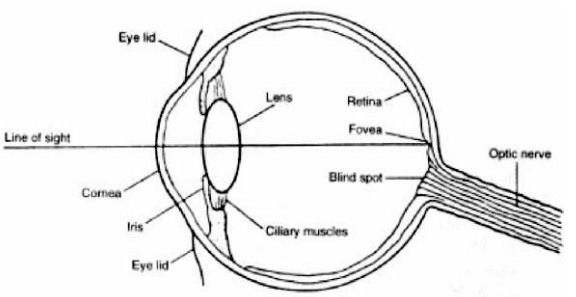

इस प्रकार से प्रकाश के प्रति संवेदनशील पदार्थ के परिवर्तन से दृष्टिपटल की तंत्रिका कोशिकाओं में सब आवेग उत्पन्न होते हैं, इसलिए विटामिन 'ए' की रक्त परिसंचरण के द्वारा निरंतर आपूर्ति दृष्टिपटल तक होती रहनी चाहिए ताकि विजुअल परपल का निर्माण हो सके, क्योंकि विटामिन की कुछ मात्रा विरंजन क्रिया में नष्ट हो जाती है। **यही कारण है कि जिन व्यक्तियों के आहार में विटामिन 'ए' का अभाव रहता है, वे क्षीण या कम प्रकाश में देखने में असमर्थ रहते हैं अर्थात् उन्हें 'रतौंधी' (Night Blindness) नामक रोग हो जाता है।**

बाह्य और अंतःनाभिकीय स्तर का कार्यात्मक कड़ी

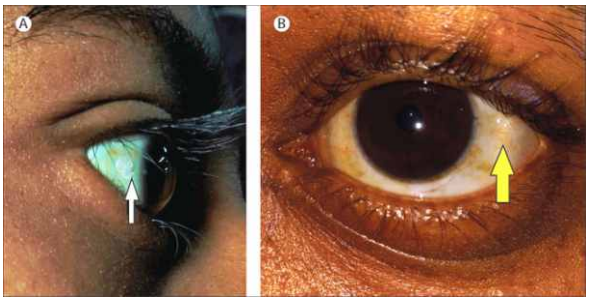

के रूप में कार्य करना- बाह्य एवं अंतःनाभिकीय स्तर की स्थिति शलाकाएँ और शंकु स्तर एवं रंजक कोशिका स्तर के मध्य रहती है। ये बाह्य और आंतरिक स्तर, असंख्य तंत्रिका कोशिकाओं से बनते हैं जो रॉड्स और कोन्स स्तर एवं रंजक कोशिका स्तर के मध्य कार्यात्मक कड़ी के रूप में कार्य करते हैं। नाभिकीय स्तर, एक अलग स्तर है और इसकी तंत्रिका कोशिकाओं के एक्जान, रंजक कोशिका के डेन्ड्रांस से जुड़ते हैं। नाभिकीय स्तर की कोशिका के डेन्ड्रांस और कोन्स की उत्तेजना के आवेग, रंजक कोशिका में पहुँचते हैं और वहाँ से एक्जान के द्वारा दृष्टि तंत्रिका से होते हुए मस्तिष्क में पहुँचते हैं।

रंजक स्तर का कार्य- रंजक कोशिका स्तर में अनियमित आकार की कोशिकाएँ होती हैं जिसमें गहरे रंग की रंजक कणिकाएँ होती हैं। ये शलाकाओं और शंकुओं के स्तर के बाह्य छोर पर मध्य पटल के समीप रहती हैं। वर्णक स्तर का मुख्य कार्य आँख के भीतरी कक्ष को गहरा रंग प्रदान करना है, जिससे दृष्टिपटल पर प्रतिबिंब अच्छा बन सके और किसी अन्य ओर से प्रकाश की किरणें प्रवेश करके प्रतिबिंब को धुंधला न करने पाएँ। ये स्तर भी कैमरे के भीतरी भाग के काले रंग के समान ही काम करते हैं। रॉड्स और कोन्स को उत्तेजित करने के लिए, प्रकाश दृष्टिपटल के वर्णक स्तर के अतिरिक्त सभी स्तरों को पार करके वहाँ पहुँचता है। तेज प्रकाश से वर्णक नष्ट हो जाते हैं और इन्हें पुनः बनने में कुछ समय लगता है। यही कारण है कि कुछ देर तक तेज प्रकाश में रहने के बाद हम तुरंत एक कम प्रकाशित कमरे में आते हैं तो वहाँ घोर अंधकार दिखाई देता है। परंतु कुछ देर में वर्णक पुनः बन जाते हैं और अंधकार की मात्रा कम होती चली जाती है, और वस्तुएँ धीरे-धीरे दिखाई देने लगती हैं। सिनेमा शुरू हो जाने पर सिनेमा हॉल में प्रवेश करने पर प्रायः सभी को इस बात का निजी अनुभव होता है। कुछ देर बाद उसी अंधकारपूर्ण स्थान की बहुत-सी चीजें स्वतः दिखाई देने लगती हैं।

मैक्युला ल्यूटिया तथा फोविया सेंट्रैलिस और अंध बिंदु- जागृत अवस्था में आँखें बराबर गतिशील रहती हैं, गति दाएँ से बाएँ तथा ऊपर से नीचे होती हुई दिखाई देती है। इन गतियों का प्रमुख उद्देश्य है कि किसी वस्तु का बिंब, दृष्टिपटल के उस भाग पर पड़े जिसमें और अधिक दृष्टि क्षमता रहती है। इस दृष्टि क्षेत्र से परे वाली वस्तुएँ, कुछ परे दिखाई देती हैं। वह भाग जिस पर प्रतिबिंब बनता है और जहाँ अत्यधिक तीक्ष्ण दृष्टि रहती है वहाँ एक छोटा-सा बिंदु या स्थान होता है, जिसे 'मैक्युला ल्यूटिया' कहते हैं। मैक्युला ल्यूटिया के बीच में एक छोटा-सा गड्ढा रहता है, जिसे 'फोविया सेंट्रैलिस' कहते हैं। जैसा कि बतलाया गया है, इसमें केवल कोन्स ही रहते हैं। जिससे कम प्रकाश में कम दिखाई देता है। मनुष्य में यह स्थान केवल 1/2 मि.मी. का होता है। परंतु इसका कार्य ऐसा है, जो संसार के इतने अधिक विस्तृत क्षेत्र का स्पष्ट चित्र छोटे-से बिंदु पर केंद्रित करके बना देता है और हमें सब कुछ स्पष्ट दिखाई देता है। मैक्युला ल्यूटिया दृष्टि नाड़ी के प्रवेश वाले स्थान के बगल वाले भाग में स्थित होता है। उस स्थान पर जहाँ दृष्टि नाड़ी, नेत्र गोलक में प्रवेश करती है, वहाँ रॉड्स और कोन्स नहीं होते। इसलिए जब इस स्थान पर प्रकाश पड़ता है तो कोई संवेदना उत्पन्न नहीं होती। इस स्थान से हम कुछ नहीं देख पाते। इस स्थान को 'ब्लाइंड स्पॉट' या 'अंध बिंदु' कहते हैं। रेटीना के सभी भाग प्रकाश की किरणों से प्रभावित होते हैं, लेकिन अंध बिंदु पर प्रकाश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

दृष्टि तंत्रिका, किएज्मा तथा दृष्टि पथ- दृष्टि नाड़ी नेत्र गोलक के पश्च भाग से निकलती है और सामने पिट्यूटरी बॉडी के पास मिलती दिखाई देती है। इस स्थान पर दृष्टि नाड़ी (Optic Nerve) के आधे-आधे नर्व फाइबर्स एक-दूसरे को क्रॉस कर आगे की ओर बढ़कर चले जाते हैं। इस क्रॉसिंग प्लेस को 'ऑप्टिक किएज्मा' के नाम से जाना जाता है। शेष ऑप्टिक नर्व 'फाइबर्स प्रकाशीय-पथ (Optic Tracts) कहलाता है और दोनों तरफ बिना एक-दूसरे को क्रॉस किए हए मध्य मस्तिष्क में चले जाते हैं।

अब न्यूरान्स के द्वारा दृष्टि आवेग, सेरीब्रल हेमीस्फियर के अनुकापालिक अंश के ऑप्टिक सेंटर या दृश्य केंद्र तक भेजे जाते हैं। यहाँ पर दृष्टि का विश्लेषण होता है। इस प्रकार दायाँ अनुकापालिक अंश बाईं ऑप्टिक नर्व के बाहर वाले आधे भाग के तंतुओं के आवेगों को तथा दाईं आँख की ऑप्टिक नर्व या दृष्टि नाड़ी के बाहर वाले आधे भाग के तंतुओं के आवेगों को ग्रहण करता है। इसके ठीक विपरीत बायाँ अनुकापालिक अंश, दाईं आँख की दृष्टि नाड़ी के भीतर वाले भाग के सूत्रों के आवेगों को तथा बाईं आँख की दृष्टि नाड़ी के भीतर वाले आधे भाग के या तंतुओं के आवेगों को ग्रहण करता है। इससे इस तथ्य का पता चलता है कि एक ओर के ऑक्सीपिटल लोब-अथवा एक ओर के ऑप्टिक ट्रैक्ट के आधे भाग में आधी दृष्टिहीनता उत्पन्न होगी, या होती है। इस प्रकार इन आवेगों का आदान-प्रदान होता है। तथा हमें दाईं या बाईं तरफ का भी ज्ञान हो जाता है।

वस्तुओं का सीधा प्रतिबिंब बनना या देखना- प्रकाश किरणें रेटीना पर पहुँचकर रॉड्स एवं कोन्स में विद्यमान प्रकाश सुग्राही वर्णकों में रासायनिक परिवर्तन लाकर रॉड्स और कोन्स को उद्दीप्त करती हैं। इससे तंत्रिका आवेग या (Nerve Impulse) निकलते हैं जो ऑप्टिक नर्व द्वारा मस्तिष्क के ऑक्सीपिटल लोब के प्रमस्तिष्क कार्टेक्स में पहुँचते हैं और उसके दृष्टि क्षेत्र में संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं, जो वस्तु हमें रेटीना पर उल्टी और अपेक्षाकृत छोटी दिखाई देती थी, उसी वस्तु का इस स्थान पर सीधा और वास्तविक प्रतिबिंब बन जाता है जिससे हमें वस्तु सीधी दिखाई देने लगती है। इस प्रकार उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट होता है कि देखने की प्रक्रिया में आँखों के अनेक अंगों के साथ-साथ मस्तिष्क का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इस प्रकार आँखों के देखने की क्रिया पूर्ण होती है और यह क्रिया जीवित आँख में निरंतर चलती रहती है।

- गायत्री नगर, दमोह, (म.प्र.)-470661

''सामयिक नेहा'' के अब तक के विशेषांक

01. बाल रोग	2000	12. स्नायु रोग	2011
02. मधुमेह रोग	2001	13. प्लास्टिक एवं रिकन्सट्रेक्टिव सर्जरी	2012
03. वृक्कावस्था रोग	2002	14. उदर रोग	2013
04. गठिया रोग	2003	15. मानसिक रोग (दो भागों में)	2014
05. हृदय रोग	2004	16. नाक कान गला रोग	2015
06. स्त्री रोग	2005	17. गुर्दा रोग (दो भागों में)	2016
07. एड्स रोग	2006	18. कैंसर रोग (दो भागों में)	2017
08. क्षय रोग	2007	19. श्वसन तंत्र रोग	2018
09. त्वचा रोग	2008	20. मस्तिष्क ज्वर रोग	2019
10. नेत्र रोग	2009	21. विरल रोग विशेषांक	2020
11. दंत रोग	2010	22. कोरोना विशेषांक (जुलाई से सितम्बर)	2020
		22. महामारी विशेषांक	2021

'सामयिक नेहा' के प्रस्तावित विशेषांक हैं - शल्य क्रिया, विरल रोग, अस्थि रोग

विशेषांकों के लिए सुझाव, प्रश्न एवं कोई विशेष जानकारी चाहते हैं तो आपका सादर स्वागत है। हमसे पत्र, मो.-9532659184, 8181957719 या ई-मेल (latamanjuamit@gmail.com, samyikneha@gmail.com) द्वारा सम्पर्क किया जा सकता है।

हृदय रोग से मुक्ति

(एक आत्मकथानात्मक संस्मरण)

-डा० अभय बंग
एम.डी.

डॉ. अभय बंग मेडिसिन शाखा के एम.डी. और अमेरिका के जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के एम.पी.एच. हैं। विश्वविद्यालयों में सर्वप्रथम स्थान और कई स्वर्णपदकों के साथ पढ़ाई पूरी करने पर स्वयं प्रेरणा से अपनी डॉक्टर पत्नी के साथ महाराष्ट्र के गड़चिरौली नामक आदिवासी इलाके में रह रहे हैं। पिछले अट्ठाईस वर्षों से वहाँ स्वास्थ्य सेवा दें रहे हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में विश्वख्याति के शोधकर्ता हैं। कई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित तथा 'टाइम' पत्रिका द्वारा 2005 में 'ग्लोबल हीरो ऑफ हेल्थ' चुने गए हैं। चवालीस साल की उम्र में उन्हें अचानक दिल का दौरा पड़ा । जब वे ठीक होकर काम पर लौटे तो अपने मित्रों एवं परिचितों को हृदय रोग से सावधान करने के उद्देश्य से पत्र लिखा। यह पत्र महाराष्ट्र टाईम्स में छप गया। मराठी पत्र साप्ताहिक 'सकाल' के सम्पादक ने इसे पढ़ कर डा. अजय बंग को उस अनुभव के आधार पर एक विस्तृत लेख लिखने का अनुरोध किया। लेख लिखा गया। छपा तो इतना लोकप्रिय हुआ कि इसकी हजारों-हजारों फोटोकापी लोगों ने अपने मित्रों, स्नेहीजनों को भेजी। चिकित्सक हृदय रोग के मरीजों को दवा की पर्ची के साथ उस लेख की कापी देने लगे। फिर इसका विस्तार हुआ और मराठी में डा. अजय बंग की अपने अनुभव पर एक पुस्तक प्रकाशित हो गयी। यह भी अभूतपूर्व लोकप्रिय हुयी। फिर हिन्दी में इसका अनुवाद आया। हिन्दी अनुवाद के पाँच संस्करण अब तक आ चुकें हैं। यह पुस्तक केवल एक आत्मकथा ही नहीं अपितु जीवन यात्रा पर संस्मरण है। पुस्तक का अंश धारावाहिक रूप में इस बार से शुरू किया गया था। इसका तीसरा भाग इस अंक में....

- कार्यकारी सम्पादक

व्यायाम का अभाव और बैठकवाली जिन्दगी ये हृदयरोग के खतरे का निर्माण करते हैं। यह चिकित्साशास्त्र में सर्वमान्य तथ्य है। मैं गढ़चिरौली के आदिवासी क्षेत्र में काम करता था लेकिन पसीना बहानेवाला नियमित व्यायाम नहीं था। व्यायाम के लिए समय ही नहीं था। रोज के 24 घंटे काम के लिए कम थे। पढ़ना अति आवश्यक था। रोगी देखना आवश्यक था। समाजसेवा एवं रिसर्च मेरी प्राथमिकताएँ थीं। संस्था चलाना, रोज सौ-दो सौ लोगों से मिलना, ढेर सारे कागज निपटाना, भाषण देना, मीटिंग में भाग लेना, सतत भागदौड़ करना सभी महत्त्वपूर्ण थे। शरीर का क्या? उसे अन्न की भूख लगती थी। शरीर-श्रम और व्यायाम की उसकी माँग नहीं थी। अगर हो भी तो मुझे सुनाई नहीं देती थी। आयु के 17वें वर्ष तक मैं नियमित व्यायाम करता था, फुटबॉल खेलता था। मेडिकल कॉलेज में प्रवेश करने के बाद खेलना बन्द हो गया और बाद के तीस वर्षों में मैं कोई नियमित व्यायाम नहीं कर रहा था। ये काफी मजेदार बात थी कि मेडिकल कॉलेज में जाने के बाद से मैंने स्वयं के स्वास्थ्य की चिन्ता करना छोड दिया था। मेरे स्वास्थ्य की सारी जिम्मेदारी डॉक्टर और हॉस्पिटल जो लेनेवाले थे! मैं मानो गैर जिम्मेदाराना जीवन जीने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो गया था। अब व्यायाम की क्या जरूरत?

परन्तु क्या सचमुच शरीर के लिए व्यायाम आवश्यक है? सच कहूँ तो छुटपन से ही शारीरिक श्रम के प्रति मेरा झुकाव कतई नहीं रहा है। मैं आलसी हूँ। यन्त्रों के युग में भला शरीर-श्रम की क्या आवश्यकता? श्बौद्धिक श्रमश नामक नया श्रम अस्तित्व में आने के बाद कष्टदायी शारीरिक श्रम मध्यमवर्गीय मनुष्य के जीवन से निकाल बाहर कर दिया गया है। आरामकुर्सी पर बैठकर टीवी देखते हुए और पुस्तक पढ़ते हुए मन अथवा बुद्धि को होने वाला

गुदगुदी भरा आनन्द कहाँ था, उस पसीना निकालनेवाले शारीरिक श्रम में? नहीं चाहिए, वह गन्दा कष्टप्रद तरीका! हजारों वर्ष पूर्व शूद्र वर्ण-निर्माण करके शारीरिक श्रम के काम उन्हें सौंपने से लेकर आधुनिक काल में सफेदपोश मध्यमवर्ग व बाबूवर्ग का निर्माण करने तक भारतीय समाज की शारीरिक श्रम के प्रति बेरुखी ही दिखाई पड़ती है। यह बेरुखी भारतीयों में सर्वत्र दिखाई देगी। इंगलैंड में बस गए भारतीयों के बच्चों में भी शारीरिक व्यायाम के प्रति रुझान अंग्रेज बच्चों की तुलना में कम देखा गया है।

परन्तु शारीरिक श्रम न करने से कौन-सा पहाड़ टूट पड़ेगा? पिछले 10 वर्षों में विशेषज्ञों का ध्यान कुछ अनपेक्षित बातों की ओर गया है। शारीरिक श्रम कम होने पर शरीर की पेशियों की इंसुलिन हार्मोन के प्रति संवेदनशीलता और प्रतिक्रिया कम हो जाती है (Insulin resistance)! इसी कारण खून में शक्कर का परिमाण बढ़ने लगता है, यही मधुमेह है। इस पर नियन्त्रण रखने के लिए शरीर अधिक इंसुलिन का निर्माण करता है। शरीर में सतत इंसुलिन अधिक बने रहने से (Hyper-insulinimia) रक्तनलिकाएँ संकुचित हो जाती हैं, ब्लड प्रेशर बढ़ता है और साथ ही हृदयरोग का सूत्रपात होता है। इस रोग के समुच्चय को चिकित्सा शास्त्रियों ने 'सिंड्रोम एक्स' या 'मेटाबालिक सिंड्रोम' नाम दिया है।

परन्तु डॉ. जार्ज शीहन नामक प्रसिद्ध अमेरिकी विशेषज्ञ ने इन सब बीमारियों को 'Exercise deficiency diseases', यानी कि शारीरिक श्रम के अभाव में होनेवाले रोगों की संज्ञा दी है। जैसे विटामिन ए, बी, सी के अभाव में विशिष्ट रोग हो जाते हैं, वैसे ही शारीरिक श्रम के अभाव से

यह रोग समुच्चय पैदा होता है। इस रोग समुच्चय में बढ़ा हुआ ब्लड प्रेशर, मधुमेह, बढ़ा हुआ कोलेस्ट्रॉल, हृदयरोग ये सब शरीर के भीतर ही भीतर साथ-साथ होते हैं। साथ ही पेट पर चर्बी चढ़ जाती है और पेट का घेरा बढ़ जाता है, यह बाह्य लक्षण है। भीतर रक्तनलिकाएँ सिकड़ने लगती हैं। भारतवंशी खाते-पीते लोगों को, विशेषकर पुरुषों को, बड़े परिमाण में 'मेटाबालिक सिंड्रोम' हो रहा है। मैं स्वयं मेटाबालिक सिंड्रोम का उदाहरण था।

मेरा एक और भ्रम इस काल में दूर हुआ। पिछले 17-18 वर्षों से मैं ग्रामीण और आदिवासी लोगों के बीच काम कर रहा हूँ। भारतीय समाज के मुख्य रोग कौन से हैं? कुपोषण, खून की कमी, क्षयरोग, कुष्ठरोग, मलेरिया, दस्त, टाइफाइड, निमोनिया आदि। हृदयरोग तो पश्चिमी या उच्च वर्ग के लोगों का रोग है। हमारे देश की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, ऐसा मैं मानता आया था। परन्तु अचानक जब मुझे हृदयरोग हुआ, तब याद आने लगा

मेरे एक बहनोई, मैनेजमेंट के प्रोफेसर। कुछ दिन पहले 53वें वर्ष में हार्ट अटैक होने से चल बसे। मेरा एक मौसेरा भाई, एक मिल में सेल्स मैनेजर था। 55 वर्ष की उम्र में उसे हार्ट अटैक हुआ। दो वर्ष पूर्व वह भी चल बसा। 'सर्च' का हमारा कार्यकर्ता, तुषार, अभी कहने आया कि उसके साढ़ू भाई को हार्ट अटैक हुआ। आयु कितनी? 37 साल। मेरा एक भतीजा विवेक, जिसे बचपन में मैंने कन्धे पर बिठाया, खिलाया था, मुझसे छह-सात वर्ष छोटा। उत्साह से छलछलाता हुआ, गोरा, सुन्दर, ऊँचा-पूरा। मध्यप्रदेश के जंगल में रहकर खेती देखनेवाला। उसे सैंतीसवें साल में हार्ट अटैक हुआ। विवेक चल बसा। अभी यह लिखते-लिखते खबर मिली कि मेरी मौसेरी बहन के पति हार्ट अटैक से चल बसे। आयु 46 वर्ष थी!

हॉस्पिटल में मुझसे मिलने आनेवाले सुशिक्षित, मध्यमवर्गी लोगों में जो मुझे सांत्वना देने के लिए आते थे, उनमें से हरएक के परिवार में किसी न किसी सदस्य को हार्ट अटैक जरूर हो चुका था। अनेकों की स्वयं की या परिवार में अन्य किसी की बायपास सर्जरी हो चुकी थी। एक नया ही दृश्य मैं देख रहा था। दिन-ब-दिन कम उम्र में, युवा अवस्था में यह रोग होने लगा है। हार्ट अटैक वगैरह

रोग अक्सर साठ की उम्र के बाद के रोग हैं, ऐसा हम समझते थे। उसके बाद पचास में ही नहीं, चालीस और अब तो तीस वर्ष की उम्र में ये रोग होने लगे हैं। मेरे एक डॉक्टर सहपाठी की 28वें वर्ष में पहली बायपास सर्जरी हुई। 'पहली' इसलिए कह रहा हूँ, कि उसकी अभी हाल ही में दूसरी बायपास सर्जरी हुई है। यह क्या हो रहा है? युवा अवस्था में समाज का क्रीम कहलानेवाले लोग हृदयरोग से जा रहे हैं। क्या भारत में हृदयरोग की महामारी फैल रही है?

दिल्ली में और मद्रास में किए गए 40 वर्ष से अधिक उम्र के मध्यमवर्गीय पुरुषों के सर्वेक्षण से ऐसा ज्ञात हुआ कि उनमें से प्रत्येक पाँच में से एक को मधुमेह और दस में से एक को हृदयरोग था। संसार में किसी भी जनसंख्या में यह रोग इतने बड़े पैमाने पर नहीं है। 1970 के बाद भारतीय शहरों में अनेक सर्वेक्षण हुए उनसे ज्ञात हुआ है कि रोग का अनुपात प्रत्येक दशक में बढ़ता ही जा रहा है और दिन पर दिन कम आयु में हृदयरोग प्रारम्भ हो रहा है। अब तो भारतीय पुरुष 30 से 40 वर्ष की आयु में मृत्यु के दरवाजे पर आ खड़ा होता है। मैं भी उन्हीं में से एक था।

करीब-करीब 50 वर्ष पहले अमेरिका में भी हृदयरोग की ऐसी ही लहर आई थी। इसके कारण थे-दूसरे महायुद्ध के बाद की समृद्धि, जीवनस्तर में (Standard of living) अचानक सुधार, खाने-पीने की बहुतायत और यन्त्रों के कारण शारीरिक श्रम की आवश्यकता का अभाव। कुछ लोगों ने इस अमेरिकी जीवन का वर्णन श्कार, टीवी, सुपर मार्केट इस त्रिमूर्ति के इर्द-गिर्द-घूमनेवाली जीवनशैलीश जैसा किया है। कार के कारण पैदल चलने की आवश्यकता नहीं रही। टीवी के सामने बैठकर मनोरंजन व विज्ञापन देखना, कार से सुपर मार्केट जाकर टीवी पर विज्ञापनों में देखी हुई सारी वस्तुएँ खरीद लाना और घर आकर फिर से टीवी के सामने बैठकर उन्हें खाने का कार्यक्रम। इस प्रकार की जीवनशैली के कारण 1950 से 1960 के दशक में अमेरिका में हृदयरोग का और उसके कारण होनेवाली मृत्यु का परिमाण प्रचंड रूप से बढ़ गया था। आगे के 10-15 वर्षों में उन्होंने इसके कारण खोज निकाले। धूम्रपान, आहार में प्राणिजन्य फैट की बहुतायत (दूध, मक्खन, चीज, अंडे, मांस), खून में बढ़ा हुआ कोलेस्ट्रॉल, ऊँचा रक्तचाप व बैठकवाली निष्क्रिय जीवनशैली ये प्रमुख कारण उन्हें समझ में आए। बैठकवाली अचल जीवनशैली खतरनाक जीवनशैली है। ऑफिस, कुर्सी, ड्राइंग रूम, सोफा और बेडरूम ये खतरनाक स्थान हैं क्योंकि समृद्ध संसार के ज्यादातर लोग यहीं मरते हैं। ये सब बातें उनकी समझ में आए और अपनी जीवनशैली में परिवर्तन लाने के प्रयत्न वहाँ के समाज में शुरू हो गए। अमेरिका में 40-50 वर्ष पूर्व जो हुआ, ठीक वही आज भारत में हो रहा है। एक बड़े समृद्ध वर्ग का भारत में उदय हो गया है। उच्च और मध्यम वर्ग मिलाकर भारत में आज करीब तीस करोड़ लोग हैं। यानी कि दूसरा अमेरिका ही भारत में है। यह भारत का अमेरिकाश तेजी से अमेरिका की जीवनशैली, खाने-पीने की अधिकता, शारीरिक श्रम से मुक्ति, शराब और धूम्रपान वाली जीवनशैली अपना रहा है। आधुनिक जीवन में कार, टीवी, फ्रिज व होटल आदि को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनके कारण बैठकवाली, खाऊ-पीऊ। जीवनशैली चल पड़ी है। इसके साथ ही बढ़ती हुई महत्त्वाकांक्षा और कैरियर की तीव्र स्पर्धा और दौड़-भाग के कारण मानसिक तनाव भी पश्चिम जैसा ही बढ़ता जा रहा है। अतः भारत में हृदयरोग का प्रभाव अचानक बढ़ता दिखाई दे रहा है।

परन्तु अभी और कुछ कारण अविदित हैं। इस जीवनशैली को अंगीकार करने के बाद गोरों को जिस अनुपात में हृदयरोग होता है, उसकी अपेक्षा भारतीय व्यक्ति को कहीं अधिक अनुपात में होता है। भारत से जाकर लन्दन, सिंगापुर, कनाडा या दक्षिण अफ्रीका में बस गए हजारों कुटुम्ब हैं। ये ज्यादातर मध्यम या उच्च वर्ग के हैं। वहाँ की समृद्धि का उनकी जीवनशैली पर खूब असर हुआ है। समान जीवनशैली वाले इंगलैंड के गोरे, काले और भारतीय लोगों का तुलनात्मक अध्ययन जब कुछ चिकित्सकीय वैज्ञानिकों ने किया, तब पता चला कि वहाँ के भारतीय वंश के लोगों में मधुमेह और हृदयरोग का अनुपात अन्य वंशियों की तुलना में सर्वाधिक है। भारत के गाँवों में रहते हुए भारतीयों को ये रोग नहीं थे। परन्तु समृद्ध पश्चिमी जीवनशैली अपनाते ही गोरे और काले लोगों की अपेक्षा भारतवंशी लोगों को यह रोग ज्यादा परिमाण में होते हैं। । ऐसा ही चित्र सिंगापुर, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा में भी

उभरा। और यही चित्र भारतीय शहरों में भी देखा गया। अतः चिकित्सा-क्षेत्र में यह निष्कर्ष निकाला गया कि कुछ आनुवंशिक अथवा जीवशास्त्रीय कारणों से भारतवंशी लोग मधुमेह व हृदयरोग का सबसे अधिक खतरा पाले हुए हैं। भारत में हृदयरोग की लहर का स्पष्टीकरण भारतवंशी लोगों की हृदयरोग के प्रति नैसर्गिक कमजोरी तथा मध्यम वर्ग की नवीन जीवनशैली में है।

ये सब कारण होते हुए भी मुझे अपने हृदयरोग का पूरा कारण समझ में नहीं आ रहा था। धन-दौलत या धन्धे की खींचतान के पीछे न भागकर आदिवासी गाँवों में स्वास्थ्य सेवा तथा रिसर्च करने वाले महत्त्वाकांक्षा एवं तनाव रहित जीवन जीनेवाले मुझ जैसे समाजसेवी को हृदयरोग क्यों कर हुआ?

इन प्रश्नों का उत्तर खोजना नाजुक काम था। क्या मैं वास्तव में महत्त्वाकांक्षा-रहित और तनावमुक्त था? फिर पिछले कुछ वर्षों से मेरा मन प्रसन्न क्यों नहीं था? सचमुच ही पिछले चार-पाँच वर्षों से मेरा मन प्रसन्न नहीं था। बुखार आने पर मुँह का जायका जैसे बिगड़ जाता है, वैसे ही जीवन का स्वाद ही चला गया सा लगता था। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि गत कुछ वर्षों से मेरे मन में एक अजीब खिन्नता थी। जीवन का रस खो गया था। क्यों? किस कारण? कब से? मेरा मन यह खोजने लगा।

बीस से पच्चीस वर्ष की आयु में कॉलेज के दिनों में विनोबा एवं जयप्रकाश नारायण द्वारा शुरू सामाजिक परिवर्तन के आन्दोलनों में मैं सक्रिय था। उन दिनों जीवन सब ओर से ऊर्जा और प्रसन्नता से खिल उठा था। एम. डी. करने के बाद रानी से शादी हुई और मैं पूरी तरह से सामाजिक कार्य में कूद पड़ा। एक मदहोशी थी। कामयाबी मिले या न मिले स्वयं को विसर्जित करने का, समाज के लिए काम करने का आनन्द विलक्षण था। ऐसी स्थिति में फिर यह खिन्नता कब आई?

तैंतीसवें साल में उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका गया। जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय में अध्ययन का काल तो बौद्धिक आनन्द का स्वर्ग था। 77 देशों के विद्यार्थी, विश्प्रसिद्ध अनुसन्धानकर्ता प्रोफेसर और अधिकाधिक ज्ञान पाने की अखंड दौड़-भाग का विलक्षण आनन्द था। मैं विश्वविद्यालय में उच्चतम गुण प्राप्त कर रहा था। सामाजिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में कुछ न कुछ बड़ा काम मेरे व रानी के हाथों होगा, ऐसा हमारे प्रोफेसर का विश्वास था। तब तो जीवन के प्रति मन उत्सुक और आनन्दमय था। फिर ये चुपके से खिन्नता कब आ गई?

भारत लौटने पर हम दोनों ने गढ़चिरौली जिले में 'सर्च' नामक स्वयंसेवी संस्था की स्थापना की। आदिवासियों को स्वास्थ्य-सेवा देना, ग्रामीण और आदिवासियों से जुड़े अनेक प्रश्नों पर अनुसन्धान करना, शराब मुक्ति के लिए आन्दोलन करना, 'सर्च' के लिए अत्यन्त सुन्दर 'शोधग्राम' का निर्माण करना इन सबमें दस वर्ष निकल गए। काम इतना बढ़ गया था कि समेटे सिमटता नहीं था। आदिवासियों के लिए अस्पताल बनाया। ग्रामीण स्वास्थ्य पर हमारे अनुसन्धान को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली। गढ़चिरौली जिले में शराबबन्दी लागू हो गई। सामाजिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में 'सर्च' एक मानदंड बन गई। परन्तु इस काल में मेरा मन कैसा था? मैं याद करने लगा। खोजते-खोजते पुनः इस कालखंड को जीने लगा। ओह! अब दिखाई देने लगा। इस काम की प्रारम्भिक अवधि के पश्चात मेरी प्रसन्नता धीरे-धीरे कम हो चली थी। यहीं से यह बदलाव शुरू हुआ। क्या कारण था? मैंने अपने ऊपर कुछ अनैसर्गिक लाद लिया था जिसको लेकर जीने से मुझे तनाव अनुभव हो रहा था, प्रतिक्रिया हो रही थी। यह ऐसा क्या था?

गढ़चिरौली में हमने 'सर्च' संस्था की स्थापना की तब प्रारम्भ के काल में महाराष्ट्र सरकार के आग्रह के कारण वहाँ की सरकारी स्वास्थ्य-सेवा व्यवस्था जिला अस्पताल एवं सरकारी प्राथमिक आरोग्य केन्द्र सुधारने का एक गैरशासकीय प्रयोग हमने किया। उस दौरान सरकारी नौकरशाही, उसकी कुछ भी न करने की और न करने देने की मनोवृत्ति, कल्पनातीत कामचोरी, भ्रष्टाचार और ऊपर से हमें ही दोषी ठहराने के निर्लज्ज कारनामे, इनका नजदीक से अनुभव किया। दो वर्ष तक किसी कीड़े के शरीर पर रेंगने जैसा वह गन्दा अनुभव रहा। अन्त में दो वर्षों में स्वयं ही उसे छोड़कर बाहर निकल आये, परन्तु अनेक व्रणचिह्न लेकर! इस काल में स्वयं पर हमने अपरिमित अन्याय किया। क्या इससे तो इस खिन्नता का निर्माण नहीं

हुआ? परन्तु उसके बाद क्या हुआ?

जैसे-जैसे विचार करते हुए अपने मन की गहराई में जा रहा था, मन घबराने लगा। मन का फोड़ा पक गया था, किन्तु चीरा लगाने की हिम्मत न हो रही थी। परन्तु और कोई इलाज भी तो नहीं था।

गढ़चिरौली में जैसे-जैसे हमारा काम बढ़ता गया, वैसे-वैसे अन्दर का मैं बदलता गया। मेरे स्वाभाविक 'मैं' से यह सफल 'मैं' भिन्न होने की वजह से इनमें अन्तर और तनाव बढ़ता गया। काम के जितने नए क्षितिज उतनी और ज्यादा दौड़। ग्रामीण आदिवासी इलाके में हमारे किए गए अनुसन्धानों का व्यापक परिणाम होना चाहिए, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्यसेवा नीतियों में उनका अन्तर्भाव होना चाहिए, गढ़चिरौली जिले में जैसी शराबबन्दी हुई वैसी ही अन्यत्र भी होनी चाहिए ऐसी अधीरता मन में उठ खड़ी हुई थी। इसके लिए एक ही समय में गढ़चिरौली के आदिवासी और मुम्बई, दिल्ली, लन्दन व न्यूयॉर्क के पॉलिसी मेकर्स, बुद्धिजीवी, विशेषज्ञ ऐसे दो स्तरों पर मैं काम कर रहा था। स्वयं को रबर जैसा तान रहा था। ऐसा तनावपूर्ण काम करने का अनुभव आनन्दरहित था, परन्तु इसमें से समाज के लिए उपयुक्त कुछ निकलेगा, इस भावना से यह तात्कालिक स्थिति मैंने स्वीकार की थी। किन्तु वह तात्कालिक स्थिति कभी खत्म ही नहीं हुई।

आगे तो काम के साथ मेरे मन में महत्त्वाकांक्षा व यश की आसक्ति भी निर्माण होने लगी। मुझे कहीं पहुँचना था। कहाँ पहुँचना है, यह मुझे मालूम नहीं था। अतः कहीं पहुंचने पर भी पहुँचने का सन्तोष नहीं मिल रहा था। मैं जहाँ पहुँचा था, उसकी अपेक्षा कहीं और ही मुझे पहुंचना था। अभी 'कुछ और, कुछ भिन्न' मेरे जीवन में घटित होना था, 'वह' कब होगा? सतत असन्तोष, सतत असमाधान! मेरा काम करना भावनात्मक आनन्द का स्रोत न रहकर बाहरी यश का साधन और इसीलिए चिन्ता का कारण बन गया था। पहले सामाजिक काम करते समय उससे मिलने वाले प्रतिफल की मुझे चाह नहीं थी, तब अपार आनन्द का अनुभव करता था। अब मानो मैं फल के लिए ही काम कर रहा था और पहले की प्रसन्नता को खो चुका था। मन में भावना का स्थान अब विचारों ने ले लिया था। भावनात्मक अनुभवों से नाता तोड़कर मैंने प्रत्येक अनुभव को बौद्धिक बना दिया था। फलस्वरूप अपनी स्वयं की भावनाओं को अनुभव करने के बजाय मैं अब उनके विषय में विचार करता था। पल-पल का अनुभव नहीं, उन पर विचार करता था। संगीत के सुर व साहित्य के भावनात्मक आवेग अनेक वर्षों से मैं मानो भूल ही गया था। भावविश्व से अलग-थलग हो जाने के कारण मन में खालीपन एवं खिन्नता घर कर गए थे। मन की ये खिन्नता रोग नहीं थी। खतरे का संकेत था। परन्तु अन्दर से मिलनेवाले इन संकेतों की ओर मैंने ध्यान ही नहीं दिया। अतः भीतरी तनाव असह्य होने तक बढ़ता गया। कहीं इस तनाव और अवसाद से तो मेरा हृदयरोग पैदा नहीं हुआ?

मेरे हार्ट अटैक के कुछ दिन बाद डॉ. अनीता अवचट ने मेरी बीमारी में पढ़ने के लिए बर्नी सीगल नामक अमेरिकन सर्जन द्वारा लिखी हुई प्रसिद्ध पुस्तक 'लव, मेडिसिन एंड मिराकल' मुझे भिजवाई। शुद्ध इच्छाशक्ति व मानसिक प्रयोगों से कैंसर के उपचार के विलक्षण अनुभवों का इसमें वर्णन है। सीगल कहते हैं कि हमारे मन का शरीर पर प्रचंड प्रभाव पड़ता है। कैंसर के अनेक रोगियों को रोग होने से पहले डिप्रेशन होता है। डिप्रेशन, चिन्ता, भय ये शरीर को नकारात्मक संकेत देते हैं। इस कारण शरीर की पेशियों की जीने की इच्छा व शक्ति कम हो जाती है। ऐसे समय कैंसर तथा अन्य बडे रोग शरीर को जकड़ लेते हैं, क्योंकि चिन्ताग्रस्त शरीर उन रोगों को बढ़ने देता है। उनसे लड़ने की शरीर में इच्छा ही नहीं बचती। बर्नी सीगल का यह प्रतिपादन मुझे सम्भव प्रतीत हुआ। और हाल ही में एक अनुसन्धान की रिपोर्ट पढ़ी। शरीर की प्रमुख रक्तवाहिनियों में निर्माण होने वाले अथरोस्क्लिरोसिस को नापने की तकनीक विशेषज्ञों ने विकसित की है। इस तकनीक से बर्कले, कैलिफोर्निया के विशेषज्ञों ने विविध लोगों की रक्तवाहिनियों का परीक्षण किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि जो खिन्न हैं, जिनका मन प्रसन्न नहीं है, ऐसी मनःस्थिति वाले लोगों के शरीर की रक्तवाहिनी नलियाँ अन्दर से सँकरी हो गई थीं। तो स्पष्ट है कि खिन्न मनःस्थिति के कारण भी हृदयरोग का निर्माण होता है।

- गढ़चिरौली, महाराष्ट्र

टी.बी. अनदेखी की तो जानलेवा

– डा. अरीना हुदा सिद्दीकी
कंसल्टेंट माइक्रोबायोलॉजिस्ट

टीबी (क्षय रोग) एक घातक संक्रामक रोग है, जो माइक्रो बैक्टीरियल ट्यूबरक्लोसिस जीवाणु की वजह से होता है। टीबी (क्षय रोग) आम तौर पर फेफड़ों पर हमला करता है, लेकिन यह फेफड़ों के अलावा शरीर के अन्य भागों को भी प्रभावित कर सकता है।

आज दुनिया में करोड़ों लोग इस बीमारी से ग्रस्त है और प्रत्येक वर्ष लाखों लोगों की इससे मौत हो जाती है। देश में हर तीन मिनट में दो मरीज क्षयरोग के कारण दम तोड़ देते हैं। हर दिन हजार लोगों को इसका संक्रमण हो जाता है। सबसे पहले डॉ. रोबर्ट कोच ने इस बैक्टीरिया कि खोज की थी। इससे पहले सुश्रुत व ऋग्वेद में भी इसका जिक्र आया है। यह बेहद खतरनाक बीमारी है। यदि इसको अनदेखा किया जाए या सही समय पर इलाज न हुआ तो यह जानलेवा हो सकती है। यह 10 गंभीर बिमारियों में से मृत्यु का एक बड़ा कारण है। महत्वपूर्ण बात यह है कि अगर टीबी का इलाज सही समय पर हो जाए तो यह ठीक हो जाती है। अधिकतर लोगों में 3 हफ्ते से ज्यादा खांसी, विशेषकर रात में बुखार, भूख न लगना, पसीना, थकान, व डायरिया से इसके लक्षण प्रकट होते हैं। 80 प्रतिशत लोगों में पल्मोनरी यानी श्वास संबंधित टीबी होती है।

फैलने के कारण : यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में हवा द्वारा फैलती है। जब फेफड़े की टीबी से ग्रसित व्यक्ति खांसता या छींकता है तो यह संक्रमण दूसरे व्यक्ति में फैल जाता है और अगर थूकता है तो यह बैक्टीरिया हवा में कई घंटों तक जीवित रह सकता है। थोड़ा-सा भी बैक्टीरया इस बीमारी का कारण बनने के लिए पर्याप्त होता है।

इलाज के शुरुआती दौर के लक्षण जैसे खांसी, बुखार आदि पर प्रायः लोग ध्यान नहीं देते हैं और स्वयं दवाइयों का सेवन करने लगते हैं और इतनी देर में कई लोगों को बैक्टीरिया फैला देते हैं। यह कहा जाता है कि यह लगभग 5 से 15 लोगों में फैलता है और यह किसी भी आयु के लोगों को संक्रमित कर सकता है। यह एचआईवी पॉजिटिव लोगों में सबसे ज्यादा सामान्य है और जो लोग कुपोषण का शिकार है, उनमें तीन गुना इसके फैलने की संभावना होती है। ऐसा कहा गया है कि लगभग 2.3 मिलियन नए केसेज कुपोषण यानी पौष्टिक आहार के अभाव में संक्रमित पाए गए हैं और अल्कोहल व तंबाकू सेवन से भी इस बीमारी का जोखिम बढ़ जाता है।

मल्टी ड्रग रेजिस्टेंट टीबी : यह देखा गया है कि दवाई लेते ही लोग अच्छा महसूस करने लगते हैं और इसके बाद दवाई लेना छोड़ देते हैं पर अगर बीच में दवाई छोड़ी जाए। तो स्थिति बिगड़ने लगती है और कुछ समय बाद पुनः वही लक्षण आने लगते हैं। ऐसे में पहली लाइन ड्रग्स कारगर नहीं होती है और दूसरी लाइन ड्रग का इस्तेमाल करना पड़

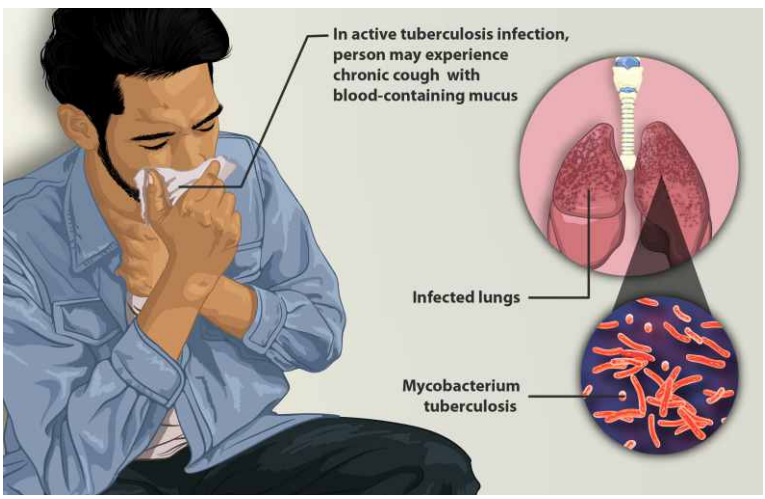

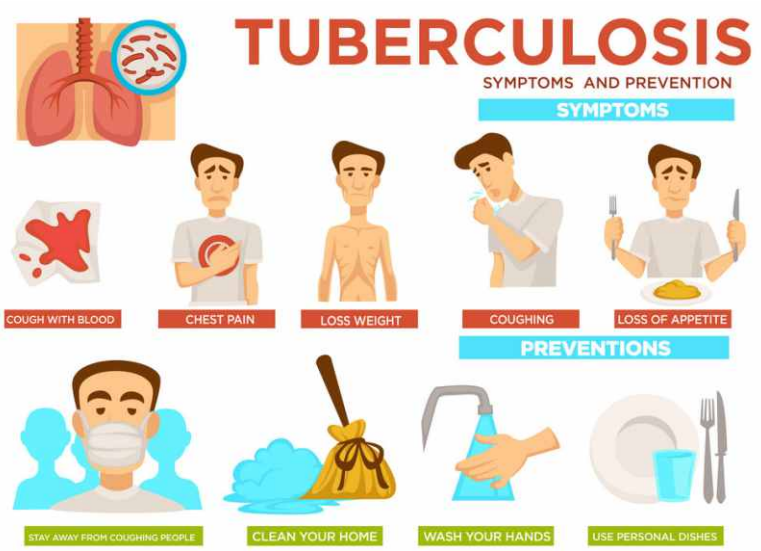

जाता है जिसका इलाज और लम्बा चलता है इसे मल्टी ड्रग रेजिस्टेन्स भी कहते है।

दवा का पूरा कोर्स करना जरूरी : इलाज में अति आवशयक है कि चिकित्सक की सलाह से दवा का पूरा कोर्स किया जाए। लोग अक्सर यह भी करते हैं कि डॉक्टर से अपनी दवा छोड़ने की बात छुपा ले जाते हैं, जो उनकी सेहत के लिए गलत है। अगर मरीज अपनी सही बात अपने चिकित्सक को बताता है तो चिकित्सक को रोग की पूरी पहचान व इलाज में सहायता मिलती है, जिससे बीमारी के गंभीर परिणामो से बचा जा सकता है।

टीबी की रोकथाम –

- अपने नजदीकी डॉक्टर से संपर्क करें।
- टीबी के मरीज के संपर्क में आने से बचें। उनका बेड, तौलिया आदि शेयर न करें और एक ही कमरे में न सोएं।
- मास्क का इस्तेमाल करें।
- अगर किसी को टीबी डायग्नोस हो तो वे सार्वजनिक जगहों पर जाने से बचें। अगर आप घर से बाहर जा भी रहे हैं तो मास्क लगाकर जाएं, जिससे बाकी लोग इस बैक्टीरिया के संपर्क में न आएँ। डॉक्टर के संपर्क में रहें और इलाज पूरा करें।

2025 तक टीबी उन्मूलन लक्ष्य : भारत का लक्ष्य 2025 तक टीबी का पूरी तरह से उन्मूलन करना है, जो मरीजों के सहयोग के बिना संभव नहीं। सरकार के आदेशानुसार हर लैब, प्राइवेट हॉस्पिटल, प्रैक्टिशनर, जो इस तरह के मरीजों की जांच व इलाज से जुड़े हैं, उनका निक्षय योजना में टीबी नोटिफिकेशन के लिए रजिस्टर्ड होना अनिवार्य है।

रोकथाम : लक्षण आने पर तुरंत नजदीकी डॉट सेंटर पर जाकर इलाज करवाएँ। सरकार टीबी ग्रसित लोगों को जानकारी देने पर 500 रुपए का भत्ता भी देती है। टीबी का इलाज करने वालों के लिए निक्षय में रिपोर्ट करना अनिवार्य है। ऐसा न करने पर जुर्माने तक का प्रावधान है।

एक्स-रे चेस्ट : इससे क्लीनिकल टीबी का पता चलता है अगर मरीज में लीजन दिखता है तो इस प्रक्रिया से टीबी की जानकारी होती है पर निश्चित तौर पर कई बार नहीं पता चल पाता है।

माइक्रोस्कोपिक जाच : बलगम की जाँच में माइक्रोस्कोप द्वारा देखने पर टीबी बैक्टीरिया का पता चलता है। यह आसान व जल्दी होने वाली जांच है परन्तु इसकी सेंस्टिविटी कम होती है।

टीबी कल्चर : इसे गोल्ड स्टैण्डर्ड जाँच कहा जाता है अगर जाँच में कल्चर पॅजिटिव आता है तो यह टीबी की बीमारी को प्रमाणित करता है, यदि किसी में टीबी का संदेह हो तो माइक्रोस्कोपी के साथ कल्चर जरूर करवाना चाहिए।

लिक्यूलर जांच : आज के परिवेश में यह जाँच आई है, जो टीबी के इलाज में बहुत ही तेजी से सहायक सिद्ध हुई है। यह मल्टी ड्रग रेसिस्टेन्स टीबी को भी जांचने में सहायक है।

– डिपार्टमेन्ट ऑफ लैब मेडिसिन
सहारा हास्पिटल, लखनऊ

बहुत देर पीठ झुकाकर न रखें

- डा. सुदीप जैन
स्पाइन सर्जन

रीढ़ की हड्डी (स्पाइन) में स्थित इंटर वर्टिब्रल डिस्क (आईवीडी) पर ज्यादा दबाव पड़ने से कालांतर में डीजनरेटिव डिस्क डिजीज (डीडीडी) की समस्या उत्पन्न हो जाती है, लेकिन आटॅफिशियल डिस्क रिप्लेसमेंट तकनीक के प्रचलन में आने से इस समस्या का इलाज संभव है।

क्या आपको मालूम है कि सीधे खड़े होने या झुकने की सभी स्थितियों को सुचारु रूप से संचालित करने में डिस्क का महत्वपूर्ण योगदान है। ऐसी डिस्क को इंटर वर्टिबल डिस्क कहते हैं। रीढ़ की हड्डी में स्थित होने वाली ये इंटरवर्टिब्रल डिस्क हमारी गर्दन से लेकर कमर के निचले हिस्से के दाहिनी ओर तक जाती है।

आईवीडी के प्रमुख कार्य : इंटर वर्टिब्रल डिस्क का प्रमुख कार्य कमर या रीढ़ पर पड़ने वाले भार को बर्दाश्त करना है साथ ही चलने-फिरने पर विभिन्न झटकों को बर्दाश्त करना है। रीढ़ में लचीलेपन और गतिशीलता की स्थितियां आईवीडी पर निर्भर हैं। आईवीडी पर पड़ने वाले लगातार दबाव के कारण इसकी क्षीण व कमजोर होने की प्रक्रिया कहल ज्यादा तेजी से होती है। शरीर के अन्य जोड़ों की तुलना में आईवीडी 15 से 20 साल पहले ही क्षतिग्रस्त हो सकती है।

रोग के कारणः ऑफिस में डेस्क वर्क या कंप्यूटर के सामने बैठकर देर तक काम करना और भारी वजन उठाना आईवीडी में आए विकारों (डिफेक्ट्स) का एक प्रमुख कारण है। इसके अलावा शारीरिक व्यायाम का अभाव और मादक पदार्थों का अधिक सेवन युवा वर्ग में भी डिस्क की समस्या बढ़ने का एक प्रमुख कारण है।

जानें आधुनिक इलाज के बारे में : अभी तक डीजनरेटिव डिस्क डिजीज (डीडीडी) की समस्या से छुटकारा पाने के लिए फ्यूजन सर्जरी का सहारा लिया जाता है। इस सर्जरी से मरीज को आराम तो मिलता है,

लेकिन यह इस समस्या का स्थाई और कारगर समाधान नहीं है। इसकी समस्या का आधुनिक इलाज आर्टिफिशियल डिस्क रिप्लेसमेंट या डिस्क रिप्लेसमेंट आर्थोप्लास्टी है। इस सर्जिकल प्रक्रिया के अंतर्गत क्षतिग्रस्त इंटरवर्टिब्रल डिस्क को आर्टिफिशियल डिस्क के जरिए बदल दिया जाता है।

इसके लक्षण -

- कमर में दर्द होना और इसमें कड़ापन महसूस होना।
- कुछ लोगों में यह दर्द बांहों के निचले भाग से पैरों के निचले भाग तक होता है, जिसे सियाटिका के दर्द का एक प्रकार कह सकते हैं।
- हाथों और पैरों में सुन्नपन और भारीपन महसूस होना। इसके साथ ही जलन और फटन महसूस होना। बांहों में कमजोरी व वस्तुओं को पकड़ने में दिक्कत महसूस करना।
- लिखने में और वजन उठाने में दिक्कत महसूस करना।
- रोग की गंभीर स्थिति में बांहों और पैरों में लकवा लग सकता है।
- मरीज का मल-मूत्र पर नियंत्रण खत्म हो जाता है।

शेष पृष्ठ सं. 37 पर

अजी छोड़िए भी कैलोरी की गिनती

– डा. कविता देवगन
न्यूट्रिशनिस्ट और वेट लॉस मैनेजमेंट कंसल्टेंट

पुणे के बैंकर आरुष शाह अपना वजन कम करना चाहते थे, और उन्होंने इसके लिए जो रास्ता चुना, वह था खाने से कार्बोहाइड्रेट्स की कटौती। दिन में सिर्फ दो चपाती और खाने में नमक भी कम।बाकी लिक्विड डाइट। वजन थोड़ा कम हुआ, मगर इसके साथ जो नई परेशानी शुरू हुई, वह चौंकाने वाली थी। विटामिन्स की कमी की वजह से जहां मूड स्विंग होने लगा, वहीं कब्ज की समस्या भी शुरू हो गई। कुछ महीने पहले एक अभिनेत्री को लेकर भी खबर थी कि एक खास तरह की डाइट में अतिवाद के चलते उन्हें अपनी जिंदगी से हाथ धोना पड़ गया था। तो क्या डाइटिंग के विचार से तौबा कर ली जाए? नहीं, लेकिन डाइटिंग के सही मायनों को गहराई से समझने की जरूरत तो है ही।

खुद को चुस्त-दुरुस्त रखना या सिक्स पैक एब्स वाली शानदार बॉडी पाना युवाओं का ही नहीं, अब हरेक उम्र की चाहत है। पहले पत्र-पत्रिकाएं थीं, अब इंटरनेट के आने के बाद वहां से सलाह लेकर खानपान में खुद ही बदलाव करने लगना अब आम बात है। अब अपने आप अपनी डाइट तय करने के पीछे यह दलील भी आम मिल जाएगी कि -इंटरनेट पर फलां डाइटिंग विशेषज्ञ का वीडियो देखा है। डाइट सेंट्रिक रिपोर्ट्स को आधार बनाकर अपनी थाली से कभी कार्बोहाइड्रेट्स, कभी फैट को हटा देना डाइटिंग का सही तरीका नहीं कहा जा सकता। डाइटिंग से नहीं, खाने से वजन होगा कम। 'डाइटिंग' यह नहीं कहता कि आप अपनी थाली से खुद चीजों को कम कीजिए। बल्कि इसका मतलब है कि आप अपनी थाली में अच्छी चीजों को जोड़िए। लेकिन हम कर रहे हैं इसके उलट। एक पार्टी में दस साल की एक लड़की को जब मैंने सिर्फ सलाद खाते देखा तो हैरानी हुई। पता चला कि वह स्ट्रिक्ट डाइट पर है, ताकि उसका वजन उसकी बहन की तरह ज्यादा न हो। मुझे नहीं लगता कि उसने इस संबंध में किसी विशेषज्ञ से सलाह ली होगी। यह उम्र जो बच्चों के लिए विकास में अहम होती है, उसमें डाइटिंग करना सेहत से खिलवाड़ करना ही तो है। जैसे ही हम खाने की अच्छी आदतें अपनाने लगते हैं, खाने की नकारात्मक चीजें अपने आप कम होने लगती हैं। खाने में प्रतिबंध लगाकर भले ही आप तुरंत वजन को कम कर लें, यह स्थायी उपाय नहीं है। अगर आप स्वस्थ और संतुलित तरीके से खाएं तो इससे आप वजन को ज्यादा नियंत्रित रख पाएंगे। यह जान लीजिए कि पौष्टिक आहार और व्यायाम ही स्थायी फिटनेस देता है। अन्यथा आपको अन्य परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है। पहले जानिए अपनी जरूरत हर किसी की शारीरिक स्थितियां और जरूरतें एक-जैसी नहीं होती जो दूसरे के लिए लाभकारी है, हो सकता है आपके लिए कठिनाई पैदा कर दे। प्रचलित डाइट आपकी विशेष प्रकृति की परवाह किए बिना वजन बेशक कम कर दें, मगर यह टिकाऊ नहीं होगा।

शोध में भी यह बात सामने आ चुकी है कि बिना अपनी शारीरिक जरूरत को जानते हुए आहार में परहेज, वजन में उतार-चढ़ाव, हार्मोनल बदलाव, मासिक धर्म में

गड़बड़ी, थकान, हृदय रोग, टाइप २ डायबिटीज और उच्च रक्तचाप के जोखिम को बढ़ा सकता है। आखिर में आपको यह समझना चाहिए कि एक स्वस्थ भोजन ही हमें स्वस्थ वजन बनाए रखने में मदद कर सकता है। इसलिए आप सलाह सिर्फ प्रशिक्षित विशेषज्ञ से खुद लें। वह आपकी शारीरिक स्थितियों के आधार पर आपकी सही जरूरतों को समझ सकते हैं और उसी हिसाब से आपको सलाह देंगे। जरूरी यह है कि आप उन्हीं चीजों का अनुसरण करें, जिन्हें हमेशा अपना पाएं। कैलोरी नहीं, पोषण पर दें ध्यान कैलोरी में कटौती करने के प्रयास में, आप किसी एक समय का भोजन छोड़ देते हैं लेकिन अगर आप ऐसा करते हैं, तो आपका शरीर आपको खाने के लिए प्रेरित करेगा। नतीजतन, अगर आप देर रात को कुकीज का एक पूरा बैग जल्दी से खा लेते हैं, तो यह आश्चर्य की बात नहीं है। कुछ भी खाने से पहले कैलोरी की गिनती आपके अंदर नकारात्मकता को ही बढ़ाएगी, क्योंकि आम स्थितियों में उम्र, लिंग और गतिविधि के आधार पर कैलोरी की जरूरत को आंका जाता है। आपका फोकस संतुलित भोजन पर होना चाहिए, जो आपको फिट रखे और ऊर्जा दे। खाने से दूरी के साइड इफेक्ट .. डाइटिंग आपको पोषक तत्वों से वंचित करता है, जिससे शरीरकी प्रतिरक्षा प्रणाली कमजोरहोती है और बीमारियों से लड़ने में असमर्थ होती जाती है। डाइटिंग के परिणामस्वरूप शुरुआती वजन कम होता है, ऐसा मांसपेशियों की कमी होने से होता है, वसा की कमी से नहीं। वास्तव में, शरीर को भोजन से वंचित करने पर वसा और जमा होती है, क्योंकि फिर शरीर जमा वसा से ऊर्जा लेता है और पोषण नहीं पहुंच रहा होता है, तो उसे यह अनुमान नहीं होता कि पोषक तत्वों का अगला दौर कब मिलेगा।

शरीर हड्डियों से कैल्शियम खींचकर भी अपनी जरूरत पूरी कर सकता है, जिससे गठिया जैसी स्थिति हो सकती है। बाल झड़ना, डार्क सर्कल और झुर्रियां, मूड स्विंग, मांसपेशियों और हड्डियों का कमजोर होना, आगे जाकर इन सबसे भी सामना करना पड़ सकता है।

एक सर्वे के अनुसार सिर्फ 30% लोग वजन को संतुलित रखने के लिए व्यायाम को प्राथमिकता देते हैं, जबकि 78% आहार को माध्यम बनाते हैं। उनमें से महिलाएं परहेज करना पसंद करती हैं और पुरुष व्यायाम करना पसंद करते हैं।

डाइट के तीन सिद्धांत–अपने भोजन में अलग-अलग रंग और विविधता जोड़कर सही संतुलन बनाएं। खाने में साबुत अनाज को चुनें। पैक्ड फूड के बजाय ताजा खाद्य पदार्थों को प्राथमिकता दें। मौसमी और लोकल चीजों को चुनें।

क्या आप लो फैट डाइट के प्रशंसक हैं? तो फिर से विचार करें। अपने आहार से वसा यानी फैट को बिल्कुल हटा देना मूड स्विंग और डिप्रेशन की वजह बन सकता है, क्योंकि गुड फैट्स (ओमेगा ३-६) हमारे मस्तिष्क में खुशी के हार्मोन की मौजूदगी के लिए महत्वपूर्ण हैं। तो वसा कम न करें, बल्कि सही विकल्प का चुनाव करें।

इसे कहते हैं 'माइंडफुल ईटिंग'

- आप रोजाना क्या खाते हैं और खाते समय आपका मूड कैसा था, इसका भी सेहत पर असर पड़ता है। आयुर्वेद में कहा गया है- जैसा अन्न, वैसा मन। मतलब भोजन हमारे शरीर और मानसिक स्थिति की खुशहाली के लिए भी जरूरी है।
- भोजन धीरे-धीरे चबाकर खाएं। खाते समय सिर्फ खाने पर फोकस रखें, टीवी और मोबाइल से दूर रहें। ऐसा इसलिए कि जब आप खाने पर फोकस रखेंगे तो आप ज्यादा खाने से भी बच. पाएंगे और भोजन की तृष्टि मानसिक स्वास्थ्य को सपोर्ट करेगी।
- जब भूख लगे, तभी भोजन करना आपके शरीर को अपनी ऊर्जा की जरूरतों को संतुलित करने और आराम से रहने में मदद करेगा। अपने आप से पूछे- मैं खा रहा हूँ, क्योंकि मुझे भूख लगी है? या मैं तनावग्रस्त, क्रोधित, उदास या ऊब गया हूँ इसलिए खा रहा हूँ?
- अपनी पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए रोजाना सभी खाद्य समूहों (अनाज, फल, सब्जियां, प्रोटीन, डेयरी, और स्वस्थ वसा) को भोजन में शामिल करें।

-साभार 'हिन्दुस्तान'

प्राकृतिक जीवन शैली है योग

- डॉ. सुनीता कुमार

सर्व विदित है कि एक स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क कार्य करता है। जिससे सभी कार्य संचालित होते हैं भौतिक सुविधा और संसाधन की चाह में हमारी भाग-दौड़ की गति दिन दुनी, रात चौगुनी प्रगति कर रही है। जिसका प्रभाव सीधा हमारे स्वास्थ्य पर पड़ रहा है किन्तु हम अपनी असिमित इच्छाओं के अधीन होकर लगातार उसकी अनदेखी कर आगे बढ़ रहे है। प्रकृति ने हमें भारी संख्या में निःशुल्क उपहार दे रखें है जिसका सम्मान करना हमनें छोड़ दिया है। सरकारी स्तर पर ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में छोटे से लेकर बड़े स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित है बावजूद इसके व्यक्तिगत स्तर पर नर्सिंग होम, क्लिनिक, मेडिकल स्टोर की बाढ़ दिखाई देती है जहाँ लोगों की भीड़ देखकर अनायास ही अन्दाजा लगाया जा सकता है कि मानव स्वास्थ्य खतरे में है। प्राकृतिक जीवनशैली अपनाकर हम इस खतरे का मुकाबला मजबूती से कर सकते है। किन्तु प्राकृतिक जीवनशैली की उपेक्षा कर हमने इसके नियमों की अनदेखी कर रखी हैं। जिस शरीर से हमें जीवनभर काम लेना है आज हमारे पास उसके लिए ही समय नहीं है। हमनें आज प्रकृति के खिलाफ अपने सुविधानुसार नियम बना लिये हैं, जबकि प्रकृति का अपना एक नियम है। जब सूर्योदय होता है तभी से हमारी दिनचर्या प्रारम्भ हो जानी चाहिए।

सूर्यास्त होते-होते हमारे अपने सभी कार्य सम्पन्न कर विश्राम की मुद्रा में आ जाना आवश्यक है जिससे दिन भर के परिश्रम से शरीर में हुई हानि को विश्राम के माध्यम से शरीर उसे स्वतः ही ठीक कर ले किन्तु प्राकृतिक जीवनशैली के विरूद्ध होकर हम रात्रि में देर तक जागते है और सूर्योदय के पश्चात् देर तक सोते रहते है जिससे हमारे शरीर में आलस्य तथा रोगों का जन्म होता है जो हमारे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त ही हानिकारक है, जब हम युवा होते हैं तब तक हमें इसका आभास नहीं होता किन्तु वक्त के साथ जैसे-जैसे शरीर की उम्र बढ़ती है वैसे-वैसे अनेक रोगों के रुप में वह हमारे शरीर में परिलक्षित होने लगता है और तब हम उसके उपचार के लिए भागने लगते हैं जबकि हम दिनचर्या, रात्रिचर्या, आहार-विहार के नियमों का प्राकृतिक रुप में पालन कर स्वस्थ्य रह सकते हैं।

आज पृथ्वी और वायुमण्डल में जिस तेजी से प्रदुषण का स्तर बढ़ रहा है उससे निजात पाने के लिए पर्यावरण मित्र जीवनशैली अपनाने के साथ ही हमें उन पुरानी पद्धतियों और परम्पराओं की ओर लौटना होगा जहाँ हमारा स्वास्थ्य समृद्ध और आयु लम्बी थी। योग उन्ही में से एक है। योग एक ऐसी पद्धति है जिससे वाह्य तथा अन्तः दोनों ही रुपों में हमें लाभ प्राप्त होता है किन्तु इसके महत्व को जाने बिना पिछले कुछ दशकों से युवा वर्ग सिनेमायी दुनिया के प्रभाव में आकर अत्याधुनिक मशीनों के माध्यम से अपने शरीर के साथ तरह-तरह के प्रयोग कर ह्रस्ट-पुस्ट एवं बलवान बनने का असफल प्रयास करता आ रहा है। वाह्य रुप में कुछ समय के लिए उसकी लालसा आधी-अधूरी पूरी

भी होती है किन्तु वह भी कुछ ही वर्षो में दम तोड़ देती है और आधुनिकता के लिबास में लिपटे उसके सपने टूटकर बिखर जाते हैं, जब उसे पता चलता है कि शरीर पर किये गये उसके प्रयोग के दुष्परिणाम के रुप में उसका शरीर अन्दर से खोखला बन चुका है, अन्तः शक्तियाँ क्षीण हो चुकी हैं। शारीरिक रुप से उर्जा विहिन होकर वह अन्तः सन्तुष्टी के अभाव में दुर्बलता के घेरे में पहुँच जाता है जहाँ उसे जीवन पर्यन्त मानसिक पीड़ा से गुजरना पड़ता है।

प्राकृतिक एवं पर्यावरण मित्र जीवनशैली के साथ योग को जीवन संस्कार, परम्परा एवं व्यवहार को अपनाने वाले लोग खुद तो शारीरिक एवं मानसिक रुप से मजबूत होते ही है साथ ही दूसरों के लिए भी प्रेरणा स्रोत बनते हैं क्योंकि योग व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रुप में समृद्ध बनाता है जिसका प्रभाव जीवन पर्यन्त बना रहता है। जो लोग भी योग का निरन्तर अभ्यास करते हैं, उनके बताये नियमों का पालन करते हैं, अपने खान-पान, रहन-सहन को संयमित तथा अनुशासित रखते हैं। वह सदैव निरोगी तथा युवा महसूस करते हैं। उनमें उर्जा तथा सकारात्मक विचारों का भण्डार होता है, वह अपने समस्त कार्यो को उत्साह एवं लगन के साथ पूर्ण करते हैं और वे ही वास्तविक रुप में खुशहाल जीवन को प्राप्त करते हैं।

वास्तव में योग बोलने तथा सुनने में छोटा जरुर प्रतीत होता है परन्तु इसका अर्थ बहुत व्यापक है। योग सामान्यतः गणित की भाषा में जोड़ को कहते है। जैसे 1+1=2 होता है तो वह गणित का योग है। योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'युजिर' धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है सम्मलित होना। भारतीय चिन्तन पद्धति व दर्शन में योग का स्थान सर्वोपरि है। योग केवल एक शब्द ही नहीं बल्कि जीवन जीने की एक कला है। योग का प्राचीन ग्रन्थो में वर्णन मिलता है। परन्तु योग के बारे में सुनियोजित तथा क्रमबद्ध तरीके से 'पातंजल योग सूत्र' में महर्षि पातंजल द्वारा वर्णित ग्रन्थ में मिलता है। इस ग्रन्थ में योग के भेद उसको करने के तरीको के बारे में सम्पूर्ण वर्णन मिलता है इस ग्रन्थ में क्रिया योग, ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग, राज योग आदि के बारे में विस्तार पूर्वक जानकारी प्राप्त होती है महर्षि पातंजल ने उच्च कोटी के साधको के लिए

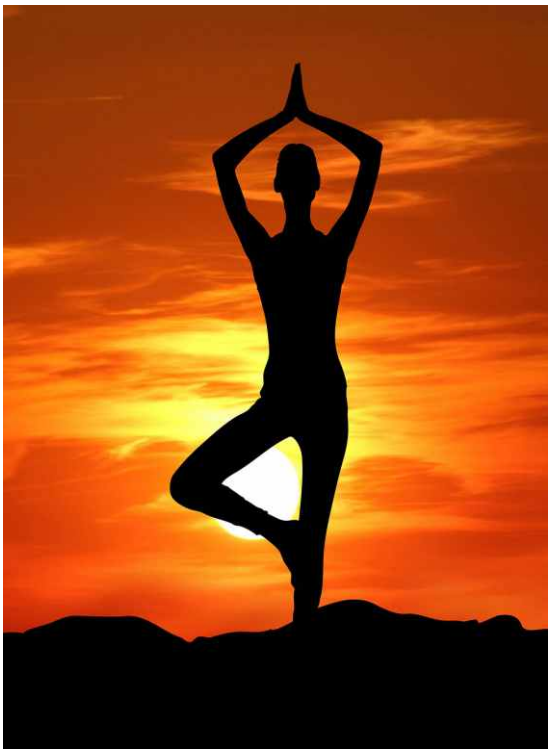

अभ्यास तथा वैराग्य योग का वर्णन किया है। मध्य कोटि के साधकों के लिए क्रिया योग का वर्णन किया गया है उत्तम कोटि के साधकों (आम व्यक्ति) के लिए अष्ट्रांग योग का वर्णन किया गया है। जिस व्यक्ति का जैसा सामर्थ्य हो वह उस योग का चयन करें।

योग का अर्थ ही जुड़ना है। जुड़ने से तात्पर्य अपने आप से जुड़ने से है जब व्यक्ति अपने अन्दर निहित अन्तः मन से जुड़ता है तो वह योग है। आत्मा से परमात्मा का मिलन ही योग है, आत्मा से तात्पर्य हमारे शरीर से है जबकि परमात्मा का तात्पर्य हमारे अन्तः मन से है। जब शरीर तथा मन का मिलन होता है तो वह योग कहलाता है।

'अथ योगानुशासनम्' (पातंजल योगसूत्र)

पातंजल का योग सूत्र का पहला सूत्र ही अथयोगानुशासनम् है जिसका अर्थ होता है व्यक्ति को सदैव अनुशासन में रहना चाहिए उसी के अनुसार व्यवहार करना चाहिए।

'योगस्याचितवृति निरोध' (पातंजल योगसूत्र)

योग के द्वारा व्यक्ति अपने अन्दर चल रही

अच्छी-बुरी जितनी भी वृत्तिया है उन पर अपना नियन्त्रण स्थपित करता है। व्यक्ति का अपनी तथा अपने भावनाओं पर पूर्ण नियन्त्रण हो जाता है यह नियन्त्रण ही योग है।

'योगः कर्मसु कौशलम'' (गीता)

योग कहता है कि व्यक्ति जो भी कार्य करे वह उसको पूर्ण समर्पण तथा मनोयोग के साथ करना चाहिए। जिससे उसको कार्य करने में हर्ष का अनुभव हो तो तभी किया गया कार्य पूर्ण रुप से उत्कृष्ट होगा। योग से व्यक्ति का शरीर तथा मन नियन्त्रित होता है जिससे उसके कार्य में कुशलता स्वतः ही दिख जाती है। आज समाज के बहुत लोग योग में रुचि ले रहे है लोग अपना मत रख रहे है इस लिए यह विस्तृत हो गया है। अब योग केवल राष्ट्रीय नहीं बल्कि अन्तराष्ट्रीय महत्व भी रखता है। पूरे विश्व में २१ जून को अन्तराष्ट्रीय योग दिवस के रुप में मनाया जाता है। देश-विदेश सभी जगहों पर उस दिन योगशालाओं का विस्तृत आयोजन होता है। वर्तमान समय में योग अपनी परम्परागत शैली से हट कर आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है योग स्वरुप आध्यात्मिकता से हट कर भौतिकता की तरफ अग्रसर है।

योग द्वारा बहुत से लोगो को लाभ हुआ है लोग रोग मुक्त हुये है योग पर अनेक अनुसंधान किये जा रहे है कि इसका किस तरह के रोगों पर कैसा प्रभाव पड़ता है। योग से केवल शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक लाभ भी होता है। आज के वर्तमान समय में ज्यादातर व्यक्तियों की जो जीवनशैली है वह तनावपूर्ण है। लोग वर्तमान तथा भविष्य की चिन्ताओं से ग्रसित है। इसके फलस्वरुप शारीरिक तथा मानसिक रोगों का जन्म हुआ है। आज के समय में अधिकांश व्यक्ति तनाव चिन्ता दुर्बलता आदि रोगों से ग्रसित हैं। इन रोगों से ग्रसित व्यक्ति स्वयं नहीं जान पाता कि वह क्या करेगा उसे सम्पूर्ण जीवन निराशाजनक लगने लगता है इस समय व्यक्ति को लगता है कि पूरी दुनिया में वह सबसे दुःखी है वह सब जो उसके जीवन में घटित हो रहा है वह कभी ठीक नहीं हो पायेगा यह सोचकर वह गलत कदम भी उठा लेता है। योग के द्वारा व्यक्ति अपने ऊपर छाने होने वाली निराशा को दूर करता है। योग तथा ध्यान के द्वारा पूरी तरह उपचार सम्भव है।

वर्तमान में स्कूल के समय योग की कक्षा भी अनिवार्य कर दी गयी है जिसमे देश की आने वाले पीढ़ी को स्वस्थ रखा जा सके। बहुत सारी मल्टी नेशनल कम्पनी अपने-अपने कर्मचारियों को तनाव मुक्त रखने के लिए योग का सहारा ले रही हैं जिससे कर्मचारियों से ठीक प्रकार से कार्य लिया जा सके। योग में रोजगार के बहुत अवसर मिल रहे हैं। देश में ही नही बल्कि विदेशों में भी योगा प्रशिक्षकों की मांग बढ़ रही है। इसीलिए आज युवा वर्ग योग की तरफ आकर्षित हो रहा है। योग में स्वास्थ्य के साथ-साथ धनोपार्जन का सुनहरा अवसर भी दिया जा रहा है। वास्तव में आज हमें संकल्पित होने कि आवश्यकता है कि हम पर्यावरण शत्रु नहीं, मित्र बनेंगे। प्राकृतिक जीवनशैली अपनायेंगे और योग को अपने जीवन में शामिल कर प्रमुख रुप से दिनचर्या का हिस्सा बनायेंगे।

- गाजियाबाद (उ.प्र.)

पृष्ठ सं. 32 का शेष

खूबियां कृत्रिम डिस्क की-

- कृत्रिम या आर्टिफिशियल डिस्क के लग जाने के बाद डीजनरेटिव डिस्क डिजीज से पीड़ित व्यक्ति आगे-पीछे झुक सकता है।
- रीढ़ की हड्डी पर पड़ने वाले झटकों को बर्दाश्त करने की क्षमता बढ़ जाती है। सच तो यह है कि क्षतिग्रस्त आईवीडी का यह एक कारगर समाधान है।
- इस डिस्क के प्रत्यारोपण के बाद मरीज 40 साल बाद भी सुचारु रूप से कार्य कर सकता है।
- डिस्क रिप्लेसमेंट में एंडोस्कोपी की मदद से एक छोटा चीरा लगाकर आटॅफिशियल डिस्क प्रत्यारोपित की जाती है।
- डिस्क रिप्लेसमेंट सर्जरी में संक्रमण का खतरा भी कम होता है।
- मरीज को शीघ्र स्वास्थ्य लाभ होता है।

- jain.sudeep1@gmail.com

जोड़ों में अगर बढ़ जाए दर्द

- डा. दीपक रैना
आर्थोपेडिक सर्जन

जाड़े के मौसम में जोड़ों के दर्द से संबंधित कई समस्याएं हो जाती हैं। इनमें कूल्हे में दर्द होना आम बात है। मेडिकल साइंस में अभी तक यह स्पष्ट नहीं हो सका है कि सर्दी बढ़ने और तापमान में गिरावट आने से जोड़ों में दर्द क्यों होता है। हालांकि यह माना जाता है। कि तापमान गिरने पर टेंडन, मांसपेशियों और ऊतकों का विस्तार होता है, क्योंकि शरीर में इनके फैलने के लिए एक सीमित जगह होती है। इसलिए सर्दियों के सीजन में जोड़ों में दर्द अधिक होता है। यह दर्द खासकर अर्थराइटिस के शिकार लोगों को होता है। जोड़ो में दर्द होने का अन्य कारण कूल्हे में बर्साइटिस, रूमेटाइड अर्थराइटिस या साइटिका हो सकता है। ऐसे लोग जो हैवी वर्कआउट करते हैं, उनके शरीर में अधिक खिंचाव हो सकता है। इससे कूल्हे या जांघ में दर्द होता है।

कूल्हे का दर्द बढ़ाने वाली स्थितियाँ- भारत में जोड़ों का दर्द बुजुर्ग लोगों में होना बहुत सामान्य बात है। युवाओं में जोड़ों या लिगामेंट में दर्द होना किसी प्रकार की चोट का परिणाम होता है। कूल्हे में दर्द होने के कुछ प्रमुख कारण हैं।

बर्साइटिस : यह एक दर्दनाक स्थिति होती है। इससे छोटे द्रव्य से भरी थैली जिसे बर्साई कहा जाता है, प्रभावित होती है। ये थैली जोड़ों के करीब की हड्डियों, टेंडंस और मांसपेशियों के बीच एक तकिया के रूप में कार्य करती है। बर्साइटिस बर्साई की सूजन के कारण होता है और यह कंधे, कोहनी व कूल्हे में ज्यादा होता है। जोड़ों में बर्साइटिस की संभावना उन लोगों में बढ़ जाती है, जो बार-बार एक ही तरह की गति करते हैं। बर्साइटिस का मुख्य लक्षण दर्द, सूजन और कठोरता होती है।

रूमेटाइड अर्थराइटिस-रूमेटाइड अर्थराइटिस का मतलब क्रॉनिक स्वेलिंग डिसऑर्डर से होता है, जो जोड़ों

पर बुरा असर डालता है। रूमेटाइड अर्थराइटिस ऊतकों के इम्यून सिस्टम और जोड़ों पर प्रभाव डालता है, जिससे दर्द के साथ सूजन होती है। लंबे समय तक रूमेटाइड अर्थराइटिस से हड्डी का क्षरण और जोड़ों की दिव्यांगता होती है।

दर्द से बचने के उपाय- सर्दियों में शारीरिक गतिविधियां बहुत कम हो जाती हैं। इसके विपरीत तैलीय पदार्थों का सेवन बढ़ जाता है। इससे वजन में काफी वृद्धि हो जाती है। खास बात यह है कि केवल ढाई किलो वजन बढ़ने से ज्वाइंट पर फर्क पड़ जाता है। इसलिए आजकल के मौसम में भी एक्टिव रहें ताकि जोड़ों की गतिशीलता बनी रहे।हर दिन स्ट्रेचिंग एक्सरसाइज करने से जोड़ों की स्टिफनेस को कम करने में मदद मिलती है साथ ही एक्टिव रहने से वजन भी नियंत्रित रहता है।

साइटिका-साइटिका एक सामान्य दर्द है, जो साइटिका नर्व पर बुरा प्रभाव डालता है। साइटिका नर्व एक लंबी नर्व होती है, जो लोअरबैक से पैरों के पीछे तक फैली होती है। सामान्य तौर पर साइटिका केवल लोअरबॉडी की एक साइड को प्रभावित करती है और दर्द जांघ के पीछे से पैरके जरिए लोअरबैक तक होता है। साइटिका का दर्द पीठ व कूल्हे पर असर डाल सकता है।

आर्थराइटिस-जोड़ों के दर्द के सबसे आम कारणों में से एक है, अर्थराइटिस। अर्थराइटिस से जोड़ों में दर्द व कठोरता आती है और जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है स्थिति और खराब होती जाती है। विभिन्न प्रकार के अर्थराइटिस होने के अलगअलग कारण हो सकते हैं।

सेहतमंद रहे लिवर

- डा. सोमनाथ चट्टोपाध्याय
कंसल्टेंट एंड एच.ओडी, लिवर

बीते वर्ष कोविड-19 पर इतना जोर दिया गया कि रोगियों द्वारा अन्य स्वास्थ्य समस्याओं की अनदेखी हुई। इससे हर बीमारी के रोगी प्रभावित हुए। लिवर मानव शरीर के सबसे प्रमुख अंगों में से एक है, जो हमारे दैनिक आहार के पोषक तत्वों को ऐसे पदार्थों में परिवर्तित करने का काम करता है, जिनका शरीर द्वारा उपयुक्त रूप से प्रयोग किया जाता है। लिवर इन पदार्थों को इकट्ठा करता है और आवश्यकतानुसार कोशिकाओं को इनकी आपूर्ति करता है। लिवर विषाक्त पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने का भी काम करता है और यह विटामिन की मदद से प्रोटीन का निर्माण करता है। इसके अतिरिक्त लीवर पुरानी या क्षतिग्रस्त रक्त कोशिकाओं को अपघटित करता है।

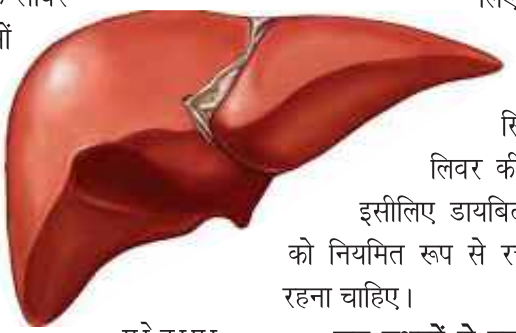

शराब के सेवन और हेपेटाइटिस के चलते लिवर की बीमारियां होती हैं। यह बदलती जीवनशैली का परिणाम है कि खानपान के चलते लाइफस्टाइल बीमारियां जैसे डायबिटीज, मोटापा, ब्लडप्रेशर आदि में बढ़ोतरी हुई है। इन स्थितियों के परिणाम स्वरूप लिवर के ऊतकों में वसा जमा होने लगने लगती है, जिससे अल्कोहलिक फैटी लिवर की समस्या होती है।

बच सकते हैं खानपान के बदलाव से- शराब के सेवन को कम करके और हेपेटाइटिस के टीकाकरण से लिवर सिरोसिस से बचा जा सकता है। बचपन से ही आहार पर ध्यान देकर और दिनचर्या में व्यायाम को शामिल करके लिवर को नुकसान से बचाने में काफी मदद मिल सकती है। लिवर के संक्रमित होने वाले कारणों में डायबिटीज भी है। डायबिटीज को नियंत्रण में रखकर लिवर को नुकसान से बचाया जा सकता है।

खुद करता है अपनी मरम्मत- लिवर ऐसा अंग है, जो अपनी मरम्मत स्वयं करने में सक्षम है। जब किसी व्यक्ति के लिवर की सर्जरी होती है या लिवर का कोई हिस्सा डोनेट किया जाता है तो लिवर का शेष हिस्सा छः हफ्ते में अपने सामान्य आकार में आ जाता है। यदि लिवर को कोई नुकसान पहुंचता है तो शुरू में इसका पता नहीं चलता है, क्योंकि इसका कोई लक्षण दिखाई नहीं देता और लिवर अपनी मरम्मत स्वयं करता है। जब स्वयं की मरम्मत करने में लिवर अक्षम होता है तो लिवर रोग के लक्षण दिखाई देते हैं और लिवर सिरोसिस का पता चलता है।

समय पर कराएं जांच- लिवर की स्थिति जानने के लिए समय पर अल्ट्रा-सोनोग्राफी और लिवर फंक्शन जांच कराना जरूरी है। फैटी लिवर एवं सिरोसिस होने पर भी इन जांचों से लिवर की स्थिति का पता चल जाता है। इसीलिए डायबिटीज और हेपेटाइटिस के रोगियों को नियमित रूप से रक्त जांच एवं अल्ट्रासाउंड कराते रहना चाहिए।

कुछ लक्षणों से पहचान- लिवर सिरोसिस को इसके कुछ लक्षणों से पहचाना जा सकता है, जैसे कि पीलिया, पेट व टांगों में सूजन और क्लॉटिंग कारकों की कमी के चलते मसूड़ों से खून आना। यदि पहचान होने के बाद तुरंत उपचार कराया जाए तो लक्षणों को नियंत्रित करके मरीज का उपचार हो सकता है, लेकिन यदि लिवर सिरोसिस गंभीर स्थिति में पहुंच चुका होता है और लक्षणहीनता की स्थिति पार हो जाती है तो लिवर ट्रांसप्लांट का परामर्श दिया जाता है। लिवर ट्रांसप्लांट में सर्जरी के जरिए खराब लिवर की जगह नए लिवर का प्रत्यारोपण होता है। इसमें रोगी के परिवार का कोई जीवित व्यक्ति लिवर का एक हिस्सा दान कर सकता है या फिर इसे ब्रेन-डेड डोनर से लिया जा सकता है। ट्रांसप्लांटेशन के बाद रोगी सामान्य तरीके से जिंदगी जी सकता है।

उदर-विकार की असलियत

- डा. विमल कुमार मोदी
एम.डी., एन.डी.

भोजन की थालीपर बैठकर क्रोध करनेवाला मनुष्य दूसरों के मुँहका तो स्वाद खराब करता ही है, अपना पाचन भी बिगाड़ लेता है। अपनी पाचन-क्रिया को अव्यवस्थित करने के लिये भोजन के समय क्रुद्ध होनेसे बढ़कर अन्य कारण कोई नहीं है। खाना खाते समय कोई चिंता भी मत कीजिये। भोजन के साथ जमाने भरकी चिंता करने वाला उदर विकार का शिकार होगा ही।

सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ उदर-विकारोंमें भी वृद्धि हुई है। आज कल उदर-विकारों को दूर करने के लिए जिस संख्या में औषधियों का अनुसंधान और उत्पादन हो रहा है, उससे यही सिद्ध होता है कि इन गोलियों, बटियों एवं टानिकों के अभाव में आधुनिक मनुष्य के लिए सक्रिय जीवन बिता पाना असंभव हो जायेगा। पेट हमारे शरीर का अत्यंत प्रमुख अवयव है। उसका स्वास्थ्य एवं उसकी सक्रियता समस्त शरीर के लिये आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। यह बात सुनने में भले ही अत्युक्तिपूर्ण मालूम पड़े, किन्तु पूर्णतः सत्य है कि अपने पेटके संबंध में हमारा ज्ञान अत्यंत सीमित एवं भ्रमपूर्ण है। लोग उदर की अम्लता की शिकायत करते हैं, किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि अम्लता तो प्रत्येक उदरमें स्वभावतया होती है। हाइड्रोक्लोरिक अम्लके बिना पेट किसी भी प्रकार भोजन पचा ही नहीं सकता। लोग पेट में वायु की शिकायत करते हैं, किंतु उन्हें यह पता नहीं है कि वायु तो पाचन-प्रक्रिया की एक अनिवार्य शर्त है। पाचन-प्रक्रिया में जो रासायनिक क्रिया-कलाप होता है, वायु उसीका एक अंग है। अतः साधारण मनुष्य के लिए सार्वाधिक हितकारी यही है कि वह अपने पेटके बारे में बिल्कुल भूल जाये और सचेत मस्तिष्क के निरीक्षण के बिना प्रकृतिको उदरका अपना काम करने दे। पेट और उसकी गतिविधि पर अनावश्यक ध्यान देन से उसकी स्वाभाविक कार्यक्षमता विशृंखल हो जाती है और वह अपना कार्य ठीकसे नहीं कर पाता।

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि पेटकी वास्तविक बीमारियां होती ही नहीं हैं, किन्तु सत्य यह है कि पाचन-संबंधी अधिकांशतः गड़बड़ियों का कारण कोई आवयविक बीमारी न होकर पाचनकी सामान्य, स्वतः चालित, अचेतन कार्यविधि में गतिरोध होना है। हमारा पाचन हमारी भावनाओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होता है और हमारे भोजन करने, उसे पचाने में उसका आनंद लेनेकी क्षमता हमारी भावनात्मक स्थितिका काफी विश्वसनीय चित्र है। कई ऐसे लोग, जो विद्या और बुद्धि के क्षेत्रमें अग्रगण्य माने जाते हैं, उदरविकार की यातना भोगने को विवश होते हैं। प्रायः देखा यह जाता है कि अनेक दिग्गज विचारक एवं श्रेष्ठ विद्वान् स्नायविक उदर विकारों के कारण अपनी प्रतिभाका पूरा उपयोग नहीं कर पाते।

अब यह बात निर्विवाद भाव से प्रतिष्ठित हो चुकी है कि हमारी भावनाओं की स्थिति और हमारे पेट की स्थिति में बड़ा गहरा संबंध है। अपने जीवन के शैशव काल में हमारा व्यक्तित्व, हमारी आवश्यकतायें एवं हमारा संघर्ष उदरके माध्यम से अभिव्यक्त होता है। इससे एक अचेतन प्रतिक्रिया का रूप क्रमशः निश्चित होता जाता है जो प्रौढ़ जीवन में एक अभिन्न आदतका वेश ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार बचपन में भावनात्मक गतिविधियों का पेट पर पड़ने वाला जो प्रतिक्रियात्मक ढंग निश्चित हो जाता है वह आजीवन न्यूनाधिक रूप में चलता रहता है।

भावनात्मक अव्यस्था में उत्पन्न होने वाली पेट की अव्यवस्था का इलाज करने के लिये सबसे पहले हमें अपने व्यक्तित्व एवं भावनात्मक जीवन के द्वंद्वों से परिचित हो लेना चाहिये और इन भावनात्मक प्रणालियों को जन्म देना चाहिये। इस संक्षिप्त लेख में प्रत्येक प्रकारके उदर-विकार पर विस्तृत चर्चा करना सुविधाजनक नहीं है। अतः मैंने केवल दो विकारों को ही चर्चा के लिये चुना है। ये दो विकार

हैं- (1) स्नायविक अजीर्ण एवं (2) भोजनसे अरुचि।

मनुष्य-शरीर में पाचन-संस्थान एक अद्‌भुत यंत्र है। हमारे शरीर में लगभग तीस फुट लंबी अन्ननलिका है। सच तो यह है कि हमारा सारा-का-सारा पाचन-संस्थान एक विशद रासायनिक प्रयोगशाला है जिसका प्रमुख कार्य है मुख द्वारा अंदर पहुँचाये गये भोजन को ऐसे रूपमें परिवर्तित कर देना, जो शरीर के तंतुओं के उपयोग में आ सके। भोजन का क्रमशः रूप परिवर्तित होता चलता है, विभिन्न पाचक रसों एवं ग्रंथिस्रावों द्वारा उसे नया रूप मिलता जाता है, प्रयोगशाला का प्रत्येक यंत्र अपने आगे वाले यंत्र को आवश्यक संकेत पहुँचाता चलता है ताकि वह भोजन का उचित उपयोग कर सकने में समर्थ हो सके।

हम जो भोजन करते हैं उसका पाचन अनजान में ही होता है और पाचन प्रक्रिया पूरी हो गई है- इस बात का पता हमें तभी चलता है जब हमें फिर से भूख लगती है। पाचन-प्रक्रिया का श्रीगणेश भोजन को रोकने या उसकी गंधके नाकमें जाने से प्रारंभ हो जाता है। इस तरह मुँह में जो पानी आता है, वह ग्रास को निगलने में ही सहायक नहीं होता, बल्कि न घुलने योग्य श्वेतसार को रक्त द्वारा समीकृत किये जाने योग्य शर्करा में परिवर्तित कर देता है। भोजन पर लार का पूरा प्रभाव हो सके, इसके लिए आवश्यक है कि ग्रास पूरी तरह चबाया जा सके।

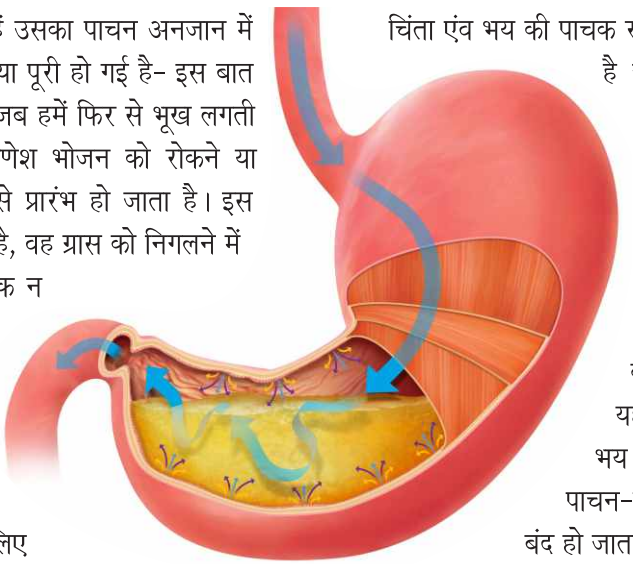

ग्रासका निगलना प्रक्रिया का प्रारंभ मात्र है, पाचन के पथपर भोजन का अभी बहुत कुछ होना शेष है। भयभीत रहने पर हमारा मुँह सूख जाता है। मुँह में लार नहीं रहती, फलतः ग्रास के निगलने और श्वेतसार के पाचन में कठिनाई होती है। मुँह को ग्रास से शीघ्र ही रिक्त करने के लिए हमें जल्दी-जल्दी निगलना पड़ता है। इसका स्पष्ट आशय है कि हम लोग ग्रास के साथ वायु भी निगल जाते हैं। भोजन के उपरान्त पेटमें तनावका कारण अधिकांश स्थितियों में भोजन को बिना लार से मिलाये जल्दी-जल्दी निगलना ही है। पेट तनता है- पेट में ही पैदा होने वाली वायुसे नहीं, बल्कि उस वायु से जो स्नायविकता ग्रस्त व्यक्ति प्रत्येक कौर के साथ निगलते हैं।

पेटमें तनाव के कारण उत्पन्न होने वाले क्लेश के कारण व्यक्ति समझता है कि उसके साथ कही कोई गंभीर गड़बड़ी है। वह आमाशय के व्रण, कैंसर और पता नहीं, किन-किन साध्य-असाध्य बीमारियों की कल्पना करता रहता है। चिंतातुरता के कारण उसके मुँह का लाला रस हीन कोटिका हो जाता है, वह जल्दी-जल्दी भोजन निगलता रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि भोजन के बाद उसके पेट का तनाव कम नहीं होता और यह जीर्ण रोग का रूप धारण कर लेता है।

चिंता एंव भय की पाचक रसों पर वही प्रतिक्रिया होती है जो लाला रस पर। भयके कारण उत्पन्न किसी भी प्रकार के साधारण से तनाव से भी भोजन पर से पेट की पकड़ ढीली हो जाती है और वह तकलीफ तथा दुष्पाच्यता का कारण बन जाता है। यह प्रयोग सिद्ध बात है कि भय एवं क्रोध के कारण पाचन-रसों का द्रवित होना पूर्णतः बंद हो जाता है। वैज्ञानिकों को इस बात का पता लगाने में सफलता प्राप्त हो चुकी है कि संतुलन एवं शांति तथा क्षोभ एवं अशांति की स्थिति में एक ही व्यक्ति के पाचक रसों के क्षरण में कितना अंतर हो जाता है।

इस प्रकार चिंता एवं भय पाचन को स्थगित कर देते हैं और विवश होकर परिस्थिति से जूझने अथवा उससे पलायन करने के लिए हमारे तैयार होने के कारण शरीर की सारी रासायनिक क्रियायें उसी दिशा में उन्मुख हो जाती है। हमारा शरीर अभी तक एक आदिम यंत्र है जिसके लिए शेर के भय एवं परीक्षा के भय में कोई अंतर नहीं है। लोगों के सम्मुख मूर्ख बनने का भय अथवा नदी में डूब जानेका भय

हमारे शरीर में एक जैसी ही प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। इन सब तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि चिंता अथवा भय के मनोवेगों के कारण चाहे वे जिस किसी प्रकार भी उत्पन्न हुए हों- हमारी सामान्य पाचन-प्रक्रिया रुक जाती है और तब कहा जाता है कि हमें स्नायविक अजीर्ण हो गया है।

यह सच है कि अधिकांश स्थितियों में स्नायविक अजीर्ण का प्रकोप जीवन में देर से होता है, किन्तु यह प्रवृत्ति जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में (शैशव अथवा बाल्यावस्था में) ही परिलक्षित हो जाती है। अपने बच्चों को दूध पिलाती हुई माता तृप्ति एवं शांति की प्रतिमा-सी जान पड़ती है, किन्तु चिड़चिड़ी एवं उतावली मां अपनी चिड़चिड़ाहट एवं उतावलेपन का कुछ भाग बच्चे को भी दे देती है। सुरक्षा की भावना के अभाव में बच्चे को स्तनपान से पर्याप्त सुख एवं संतोष नहीं मिलता और अनेक बार पिया हुआ दूध उल्टी द्वारा बाहर निकल जाता है। बच्चे को दूध पिलाना मांके लिए कठिन हो जाता है और बच्चे के मन में भोजन के साथ तनाव एवं तकलीफ के भाव अविभाज्य रूपसे जुड़ जाते हैं।

जीवन का भय

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि घरके बड़े लोग बच्चे के खाने-पीने की प्रत्येक वस्तु पर टिप्पणी करते रहते हैं 'यह खाना चाहिए'- 'यह नहीं खाना चाहिए' आदि कह-कहकर बच्चे के अंतर्मन में भोजन के प्रति एक प्रकार का शंका भाव उत्पन्न कर देते हैं। बच्चा अपने पिता की भोजन-संबंधी रुचियों-अरुचियों के प्रति दिये जाने वाले ध्यान को भी देखता है, कृमि, सीलन, गंदगी आदि को लेकर कई घरों में जरूरत से ज्यादा उधेड़बुन होती रहती है। इन सब बातों को देखकर बच्चों को यह अनुभूति होने लगती है कि जीवन कोई अत्यन्त खतरनाक वस्तु है और जीवित रहने के लिए प्रत्येक क्षण सतर्क रहने की आवश्यकता है। कुछ घरों में भोजन के समय बच्चों में कोई-न-कोई झगड़ा होती ही है। इस प्रकार के वातावरण में पले बच्चे का उदर संवेदनशील हो जाये तो कोई आश्चर्य नहीं। कुछ घरों में खाना खाते समय बच्चों को अनुशासन की सीख दी जाती है और बारबार कहा जाता है- 'ऐसे नहीं, ऐसे खाओ'- गिलास दाहिने हाथ से नहीं, बायें हाथ से पकड़ो आदि। जो भाव प्रसन्नता और निश्चितता का होना चाहिए, वह तनाव और आशंका का कारण बन जाता है। खाना खाते समय बच्चे से रोज-रोज यह कहना कि आज फिर तुमने अपने हाथ नहीं धोये, 'तुम्हारे नाखून बहुत बढ़ गये हैं', 'तुम खाना कपड़ों पर क्यों गिरा रहे हो?' निश्चय ही बच्चेके लिए भोजन को अरुचिकर बना देता है। बादमें आने वाले जीवन में भी बचपन की यह स्मृति भूलती नहीं है और पेटको मथती रहती है।

अन्य मनोविकार

भोजन की थाली पर बैठकर क्रोध करने वाला मनुष्य दूसरों के मुँहका तो स्वाद खराब करता ही है, अपना पाचन भी बिगाड़ लेता है। अपनी पाचन-क्रिया को अव्यवस्थित करने के लिए भोजनके समय क्रुद्ध होने से बढ़कर अन्य कारण कोई नहीं है। खाना खाते समय कोई चिंता मत कीजिये। भोजनके साथ जमाने भर की चिंता करने वाला निश्चय उदर-विकार का शिकार होगा ही।

आमाशय व्रण जैसे क्षणिक आंगिक रोग भी पाचक ग्रंथियों की सामान्य रासायनिक प्रक्रिया की असफलता के परिणाम होते हैं। पाचन प्रणाली से गुजरने वाला भोजन अनुकूलता खोकर तीस फुटके लगभग लंबी प्रणाली में यहां-वहां खरोंच उत्पन्न कर देता है।

प्रायः वे लोग जो बुद्धिजीवी होते हैं- जो अपनी संकल्प-शक्ति, सदाशयता और महत्त्वाकांक्षा के कारण निरंतर किसीन-किसी काममें जुटे ही रहते हैं, आसानी से स्नायविक अजीर्णता एवं आमाशय व्रण के शिकार हो जाते हैं। इसका कारण निरंतर तनावपूर्ण स्थिति एवं उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाला रासायनिक एवं प्रक्रियाजन्य परिवर्तन होता है। ।

कभी-कभी किसी प्रकार के आवयविक दोष के बिना भी कुछ लोगों को वमनकी प्रवृत्ति हो जाती है। व्यक्ति वमन करता है, क्योंकि वह स्वयं ऊबा हुआ है, अपनी गंदी आदतों से उसने अपना जीवन वितृष्णाजनक बना लिया है और नैतिकता की कसौटी पर स्वयं को खरा नहीं पाता। वमन करने की चेष्टा अपने अरुचिपूर्ण व्यक्तित्व एवं भावों को दूर करने का प्रतीक है। कुछ लोग कुछ विशेष खाद्यों को खा ही नहीं सकते इसके लिये वे किसी-न-किसी प्रकार का

बौद्धिक समाधान भी खोज लेते हैं, पर यह अरुचि मनोवैज्ञानिक भय मात्र है।

हम भूख से अधिक क्यों खाते हैं?

इसी प्रकार अतिभोजन भी प्रमुखतः एक मनोवैज्ञानिक समस्या है। व्यक्तित्व में किसी प्रकार की विश्रृंखलता अथवा असंतुलन के कारण ही हम भूख से अधिक खाने को बाध्य होते हैं। स्वस्थ, संतुलित व्यक्ति भूख से ज्यादा कभी नहीं खाता। उसे जैसे मूल प्रवृत्ति से यह पता चल जाता है कि उसने भूख भर भोजन कर लिया है, किंतु वह व्यक्ति जो जीवन में असफलता का अनुभव करता है अथवा जिसे जीवन में यथोचित सम्मान नहीं मिलता, अनजान में ही आवश्यकता से अधिक खा लिया करता है। इस प्रकार ऐसे लोग अपने जीवन के रिक्त स्थान अतिभोजन से भरने का प्रयास करते हैं।

भोजन से अनिच्छा का मूल भी स्नायविकता में है। डाक्टर लोग इसे 'एनोरेक्सिया नरवोसा' कहते हैं। इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि उदर स्थित स्नायुमंडल रुग्ण अथवा जर्जर है, किंतु यह अवश्य सिद्ध होता है कि जीवन के प्रति व्यक्ति में सहज स्वीकृति का भाव नहीं है।

'एनोरेक्सिया नरवोसा' से पीड़ित व्यक्ति का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह पता चलेगा कि बचपन में उसने अभाव अथवा तिरस्कार पूर्ण कटु जीवन बिताया है। किशोरवय बालक की अंतः चेतना में अभाव एवं तिरस्कार के भाव बद्धमूल हो जाने के कारण वयस्क जीवन में उलझन अथवा संघर्ष का सामना होते ही अभाव अथवा तिरस्कार

उभरकर सामने आ जाते हैं। इस प्रकारके मनोविकारों से ग्रस्त व्यक्ति मृत्यु एवं जड़ता की मन-ही-मन अनजान में उपासना करते रहते हैं।

'एनोरेक्सिया नरवोसा' उन व्यक्तियों को भी अपना ग्रास बनाता है जो धार्मिकता में अति कर देते हैं। वे स्वयं को बडा साधक एवं त्यागी मानते हैं और भोजनके लिये उनके मन में कोई महत्त्व नहीं रहता। 'एनोरेक्सिया नरवोसा' के शिकार वे लोग भी बनते हैं जो सदा अवसादग्रस्त रहते हैं और आत्मग्लानि में घुलते रहते हैं। उपवास एवं अनाहार द्वारा शरीर को कष्ट पहुँचाकर उन्हें आत्मसुख मिलता है। अतिसंवेदनशील व्यक्ति भी निराश एवं विषण्णता के क्षण में जीवन के प्रति आकर्षण खो देने पर भोजन के प्रति उदासीन हो जाते हैं और भोजन को देखते ही वे वितृष्णा से भर जाते हैं।

रक्षा कैसे हो?

इन समस्त आधियों एवं व्याधियों से रक्षाका उपाय है जीवन के प्रति एवं स्वयंके प्रति अस्वीकार भावना से मुक्ति। ऐसे व्यक्ति को अपने अंतर्मन को विश्लेषण के आलोक में लाकर देखना चाहिए। उसे आवश्यकता है स्वयंके प्रति तथा जीवनके प्रति एक अधिक स्वीकारात्मक प्रवृत्ति की। उसे अपना एवं जीवन का मूल्य समझना चाहिये और यह समझना चाहिए कि जीवन जीने के लिए है। उसकी जो शक्ति आत्मग्लानि में नष्ट होती है, वह यदि स्वयं एवं अन्य व्यक्तियों के जीवन को समृद्ध बनाने में प्रयुक्त होने लगे, तो उसे अपने रोग से छुटकारा मिल जायेगा।

अच्छा हो, ऐसे लोग समय बिताने के लिये प्रकृति के सहचर बन जायें अथवा मित्र-मंडली के बीच बैठकर उन्मुक्त हास्य की स्निग्ध गरमी में स्वयं को ताजा कर लें। यदि ऐसे लोग धार्मिक प्रवृत्ति-कोटि के हैं तो वे भगवान को धन्यवाद दें, जिसने उन्हें जीवन का वरदान दिया है और उपभोग के लिये ऐसी मनोरम वस्तुओं की सृष्टि की है। ऐसा लगनेपर जीवन के प्रति, फलतः भोजनके प्रति अस्वीकार का भाव लुप्त हो जायेगा। जब तक वे अस्वीकृति- मूलक भावनाओं से अपने को मुक्त नहीं कर लेते, तब तक अजीर्ण एवं उदर-विकारों से उनको मुक्ति नहीं मिल सकती।

- आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर

स्वस्थ समुद्र, स्वस्थ पृथ्वी

– डा. अनिता भटनागर जैन

ग्रीक पौराणिक कथाओं में 'ओशनस' अवतार एक विशाल नदी है, जो पृथ्वी के चारों ओर लिपटी हुई है और 'पोसाइडन' को समुद्रों का देवता माना गया है। हिंदू पुराण में 'वरुण' समुद्र के देवता हैं। मंदिरों में भले ही वरुण देव की पूजा नहीं होती, परंतु भगवान स्वयं उनसे मदद मांगते हैं, जैसे भगवान राम ने मांगी थी। समुद्र जीवन और अमरत्व का भी स्रोत है। देवताओं और असुरों के समुद्र मंथन से ही अमृत कलश प्रकट हुआ था। कुल मिलाकर सदियों से ही समुद्र का हमारे जीवन में जो स्थान रहा है, वह किसी भी प्रकार से स्तरीय या हल्का नहीं है। फिर भी आज के दौर में आठ जून को मनाए जाने वाले 'विश्व समुद्र दिवस' की महत्ता कदाचित पांच जून को विश्व पर्यावरण दिवस के इतना समीप होने की वजह से कम हो जाती है और कई लोगों को इसके बारे में जानकारी तक नहीं होती। 'विश्व समुद्र दिवस' की अवधारणा सर्वप्रथम 1992 में ब्राजील में हुए 'अर्थ समिट' में की गई थी, यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अधिकारिक रूप से इसे 2008 में ही मान्यता दी गई। इस अंतरराष्ट्रीय दिवस का उद्देश्य जनसामान्य में समुद्रों के संरक्षण व उसके संसाधनों के चिरस्थायी प्रबंधन हेतु जागरूक करना है। यही कारण है कि हर वर्ष की भांति इस वर्ष 2021 का विषय 'समुद्रः जीवन व आजीविका' चुना गया है।

समुद्र ने पाली हैं सभ्यताएं – ऐतिहासिक रूप से सभ्यताएं समुद्र तट की आहार, परिवहन, सुरक्षा व स्वास्थ्य सुविधाओं के दृष्टिगत उनके समीप विकसित हुई। वर्तमान में विश्व की 40 फीसद आबादी समुद्र तट से 100 किलोमीटर में निवास करती है। भारत में भी 14.2 फीसद आबादी 69 जनपदों में समुद्र के समीप रहती है। यूएन. फूड एंड एग्रीकल्चर आर्गेनाइजेशन के अनुसार, दुनियाभर में करीब 330 करोड़ लोगों को 20 फीसद दैनिक प्रोटीन मछलियों से प्राप्त होता है, 50 फीसद से अधिक समुद्री भोजन का व्यापार विकासशील देशों से है (85 फीसद एशिया से) तथा 10 फीसद वैश्विक आबादी की आजीविका मछली पालन है।

विकराल होंगे इसके प्रभाव– जलवायु की दृष्टि से समुद्रों की अहम भूमिका है, क्योंकि पृथ्वी के वातावरण के 93 फीसद ताप को वह जज्ब करते हैं। चेतावनी है कि वर्ष 2100 तक पृथ्वी का तापमान पूर्व औद्योगिक समय से डेढ़ डिग्री सेंटीग्रेड बढ़ जाएगा। विश्व मेट्रोलाजिकल संस्था के महासचिव के द्वारा मई 2021 में यह चिंताजनक बात कही गई है कि तापमान की यह वृद्धि अब 2026 तक ही हो जाएगी। तापमान में वृद्धि, मरीन हीटवेव, समुद्रों का अम्लीकरण व प्रदूषण से 700 से अधिक प्रजातियां प्रभावित हैं व इससे समुद्री तूफानों, तेज बारिश के आसार परिलक्षित हो रहे हैं जिसका सीधा संबंध आजीविका व अर्थव्यवस्था से होगा।

बढ़ रहे हैं डेड जोन– विश्व के 90 फीसद मछली पालन क्षेत्रों का अधिकतम दोहन हो चुका है और 2050 तक मछलियां समाप्त होने की भी आशंका है। वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड की वृद्धि व समुद्रों के अम्लीकरण से कोरल रीफ, जिनमें मछलियां पलती हैं, नष्ट हो रही हैं। केवल कोरल रीफ का आर्थिक योगदान 50 करोड़ डालर

आंका गया है। इस तरह मछलियों के नष्ट होने से कोरल रीफ के समीप निवास करने वाले करीब 40 करोड़ लोगों की वार्षिक आय, उनके आहार व स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव होगा। नदियों के द्वारा प्रचुर मात्रा में उर्वरक व पशुओं और मनुष्यों का अपशिष्ट समुद्रों में ले जाया जा रहा है जिससे पानी में आक्सीजन की कमी से डेड जोन (समुद्र में ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ आक्सीजन की कमी के कारण मछलियों के जीवित रहने की संभावना मुश्किल हो जाती है) बन रहे हैं। विश्व में 375 डेड जोन हैं, जिनमें मौजूद लाल एलगी की वजह से समुद्री जीव-जंतु नष्ट हो रहे हैं और मनुष्यों में बीमारियां भी पैदा हो रही हैं। समुद्र में तैर रहे मानव सृजित समुद्री कचरे में 80 फीसद प्लास्टिक है, जिसका अनुमानित भार 10 करोड़ टन था। इस कचरे में फंसने, दम घुटने और इसे निगलने से अनेक समुद्री जीव प्रभावित हो रहे हैं। सूर्य की किरणों से प्लास्टिक फोटोडिग्रेड होती है, परंतु-पानी में इसकी गति बहुत धीमी हो जाती है। इसके छोटे-छोटे कण समुद्र के माध्यम से हमारी खाद्य श्रृंखला में प्रवेश करके भोजन दूषित कर रहे हैं।

विविध प्रयासों से बचेगा जीवन- यह स्वतः स्पष्ट है कि जीवन व आजीविका हेतु समुद्र अति महत्वपूर्ण है। समुद्रों की कोई सरहद नहीं है, जहाँ से किसी अन्य का फैलाया हुआ कचरा रोका जा सके। अतः अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सभी को समन्वित प्रयास करने होंगे। समुद्रों के संरक्षण व प्रबंधन हेतु बहुआयामी रणनीति ही कारगर होगी। जलवायु परिवर्तन और ओशन वार्मिंग के दुष्प्रभाव हेतु वही विविध प्रयासों की आवश्यकता है, जो पर्यावरण संरक्षण के लिए जरूरी हैं। नीतिगत रूप से फासिल फ्यूल का कम व रिन्यूएबल साफ ऊर्जा का अधिक उपयोग, अंतरराष्ट्रीय जल परिवहन का डीकार्बोनाइजेशन, मैनग्रोव जंगलों का संरक्षण, समुद्रों के योगदान के आकलन हेतु समुद्री लेखा-जोखा रखना व भूमि सृजित प्रदूषण पर अंकुश रखने से समुद्री प्रदूषण को नियंत्रित करना आदि का कार्यान्वयन करना होगा। हाल ही में टाक्टे तूफान ने अरब सागर में फेंके गए अथाह कूड़े को वापस मुंबई के तटों पर डाल एक ट्रेलर दिखाया है।

सामान्य आदतें बदलेंगी हालात- समुद्री भोजन व

उससे संबंधित अर्थव्यवस्था के संरक्षण हेतु मछली पकड़ने की नाजायज, अनियंत्रित, विध्वंसक प्रणालियों पर नियंत्रण रखना होगा। मछली पकड़ने के कोटे का अनुपालन सक्रिय सामुदायिक भागीदारी से ही संभव होगा जिससे सभी की जीविका व भोजन भविष्य के लिए भी सुरक्षित रहे। समुद्री संरक्षित क्षेत्रों का ध्यानपूर्वक पोषण भी करना होगा। यह कोई सरल समाधान नहीं है, निदान केवल प्रदूषण व मानव के लोभ के न्यूनीकरण से ही संभव है। बजार्न जिंसन के अनुसार 'औसत मनुष्य' की प्रदूषण छाप को कम करना ही एकमात्र उपाय है। इसके लिए चार आर-रिड्यूस, रीयूज, रीसाइकिल और रिफ्यूज को जीवन में शामिल करके बहुत कुछ संभव है। आज के उपभोक्तावाद के युग में यह सोच और भी जरूरी है। बिजली बचाने, कागज का कम उपयोग, वाहनों की पूलिंग, मेट्रो, बस वगैरह के उपयोग, लालबत्ती होने पर इंजन बंद करने, प्लास्टिक की वस्तुओं का उपयोग घटाने, समुद्री तटों को साफ रखने जैसी आदतों से प्रत्येक व्यक्ति अपने स्तर पर जलवायु परिवर्तन व प्रदूषण को रोकने हेतु योगदान दे सकता है। इस जीवनशैली हेतु सामाजिक व राजनैतिक इच्छाशक्ति के साथ दुष्प्रभाव के वैश्विक व स्थानीय स्तर के आंकड़ों व सूचनाओं की जागरूकता की सतत आवश्यकता है। स्वस्थ समुद्रों के बिना स्वस्थ पृथ्वी संभव नहीं है। अतः स्वार्थवश ही मानवजाति को यह स्वीकार करना होगा कि समुद्र उनकी व्यक्तिगत व सामूहिक जिम्मेदारी है, क्योंकि दुष्प्रभाव भी केवल मनुष्य की गतिविधियों का परिणाम है। समुद्र वृहद है अतः उनकी अवहेलना का दुष्परिणाम भोगना विकल्प नहीं है।

(लेखिका पूर्व आईएस अधिकारी और वर्तमान में मेंबर यूपी पब्लिक सर्विस ट्रिब्यूनल है)

प्रोत्साहन मांगता पारंपरिक चिकित्सा ज्ञान

– क्षमा शर्मा
वरिष्ठ साहित्यकार एवं सम्पादक

करीब एक-डेढ़ दशक पहले जब स्टेम सेल से चिकित्सा के बारे में चर्चा शुरू हुई थी तब यह दावा किया जा रहा था कि भ्रूण से प्राप्त स्टेम सेल्स से तमाम ऐसी बीमारियां दूर हो सकती हैं जिनके बारे में कहा जाता है कि वे एक बार हो जाएं तो कभी ठीक नहीं होती जैसे ब्लड प्रेशर, डायबिटीज, गठिया आदि। हाल ही में जब चीन में कोरोना फैला तो सुनने को मिला कि वहां रोगियों के इलाज में अपनी पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों का भी इस्तेमाल किया गया। तभी अमेरिका में कहा गया कि स्टेम सेल्स का इस्तेमाल भ्रूण के मानवाधिकार के विरुद्ध है। ध्यान रहे जबसे आइवीएफ के जरिये शिशुओं का जन्म होने लगा है तब से ऐसी बातें हो रही हैं। दरअसल जब किसी क्लीनिक में भ्रूण को विकसित किया जाता है और माता के गर्भ में स्थापित किया जाता है तब एक नहीं कई भ्रूण विकसित होते हैं। माता के गर्भ में तो एक की ही जरूरत होती है इसलिए बाकी को नष्ट कर दिया जाता है। इन्हीं भ्रूणों से स्टेम सेल्स प्राप्त करने की बातें हो रही थीं। अमेरिका में इसका विरोध होने लगा, जबकि कई देशों में इस पर शोध जारी है। अपने देश में भी स्टेम सेल्स से इलाज करने के विज्ञापन देखने को मिलते हैं।

स्टेम सेल्स के बारे में पढ़ते-पढ़ते उस प्रतिक्रिया पर नजर पड़ी जिसमें कहा गया था कि क्या आपको लगता है कि मेडिकल माफिया इस तरह के किसी इलाज को आने देगा जिसके कारण जीवन भर चलने वाले रोग ठीक हो सकें? अभी एक बार ये रोग लग जाएं तो जीवन भर दवा खानी पड़ती है। रोगी उस दवा बनाने वाली कंपनी के लिए सोने का अंडा देने वाली मुर्गी होती है। इसीलिए कोई भी रिसर्च सिर्फ चूहों तक ही होकर रह जाती है। पता नहीं सच क्या है, लेकिन बड़ी फार्मा कंपनियां दवाओं में सुधार तो करती हैं, लेकिन इसमें संदेह है कि वे किसी रोग को सदा के लिए खत्म करना चाहती हैं? उनकी ओर से जीवन रक्षक दवाओं के बदले ऐसी दवाएं भी एक तरह से जबरदस्ती बेची जाती हैं, जिनकी जरूरत नहीं होती।

सालों पहले पारंपरिक चिकित्सा और प्राच्य विद्या के एक विशेषज्ञ ने कहा था कि यह जो तपस्या करने वाली बात है जिसके तहत कहा जाता है कि लोग जंगल में जाकर हाथ जोड़कर तपस्या करने लगते हैं, उसका कोई मतलब नहीं। इस तरह की बातें भ्रम फैलाने की कोशिश हैं, क्योंकि जंगल जाकर लोग शोध और खोजबीन करते थे। किस मसाले से कौन सा रोग दूर होता है, कौन से आसन से किस रोग को दूर किया जा सकता है, प्राणायाम के क्या फायदे हैं? मिट्टी-पानी से की जाने वाली प्राकृतिक चिकित्सा जिस पर गांधी जी का भी बहुत भरोसा था, से कौन-कौन रोग ठीक होते हैं-यह सब गहन शोध का परिणाम है। यह भी शोध से ही पता चला कि अरबी को अजवायन से छौंकना है, दूध और मूली एक साथ खाना वर्जित है, पके कटहल के साथ पान खाना मना है। चावल, मूली, कढ़ी रात में नहीं खाना चाहिए, किस जानवर के दूध-दही के क्या फायदें हैं?

बादलों और नक्षत्रों की स्थिति को देखकर आज भी बारिश के सही अनुमान लगाए जा सकते हैं। घाघ इसके विशेषज्ञ माने जाते थे और ये सब सदियों से चली आती ऐसी ही हजारों बातें शोधों का परिणाम हैं, न कि हाथ

जोड़कर तपस्या करने का। पश्चिम की भाषा में जिसे क्लीनिकल ट्रायल कहते हैं वे यही शोध हैं। सबसे बड़ी बात यह कि हमारे घरों की रसोई भी एक तरह का मेडिकल स्टोर है और घर की महिलाएँ डॉक्टर। वे खाद्य पदार्थों और मसालों से दवाएं तैयार कर सकती थीं। वे यह जानती थीं तरह-तरह के फोड़ों में कौन सी पुलटिस बांधनी है, इसे किन मसालों, फूल, पत्तियों से तैयार किया जाता है। आज भी न केवल भारत में, बल्कि यूरोप में भी सौंफ का पानी पिलाते हैं।

कहा जाता है कि जब यूरोप और अमेरिका कबीलाई समाज थे तथा वहां असली अंधकार युग था तब अपने यहाँ तमाम तरह के चिकित्सा शास्त्र का विकास हुआ। क्या हम जानते हैं कि कैसे एलोपैथी के दबदबे ने तमाम किस्म के पारंपरिक ज्ञान को हमारे जीवन से बाहर कर दिया? बहुत से देशों में एलोपैथी के अलावा अन्य चिकित्सा पद्धतियां जिनमें होम्योपैथी भी शामिल है, प्रतिबंधित हैं। ऑस्ट्रेलिया में होम्योपैथी से इलाज नहीं किया जा सकता। वहां रहने वाले एक परिवार ने बताया कि उनके एक मित्र के बच्चे को कैंसर हो गया। उन्होंने चुपके-चुपके होम्योपैथी से इलाज किया। बच्चा बचा नहीं। पुलिस ने इस अपराध में माता-पिता को जेल भेज दिया। आज वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों से इलाज करने वालों को झोला छाप नाम दे दिया जाता है, बगैर यह जाने कि उनकी पद्धति कितनी वैज्ञानिक है? यह रवैया ठीक नहीं। इसी रवैये के कारण आयुर्वेद का नाम आते ही तमाम लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, जबकि उससे हमारे यहाँ हजारों साल से इलाज होता चला आ रहा है। हर पारंपरिक ज्ञान में कुछ अच्छाइयाँ हो सकती हैं। आखिर उनका लाभ क्यों न उठाया जाए? हम जानते हैं कि अधिकांश रोगों का संपूर्ण निदान एलोपैथी में नहीं है। हां, तत्काल की राहत जरूर है, जिसका लाभ भी लोगों को मिलता है, मगर जब से अस्पतालों में टारगेट तय किए जाने लगे हैं तबसे मरीजों को बिना मतलब के उन इलाजों से गुजरना पड़ता है, जिनकी उन्हें जरूरत नहीं होती या फिर वे तमाम टेस्ट कराने पड़ते हैं जो आवश्यक नहीं होते। एलोपैथी के विपरीत पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में कई रोगों का समूल निदान किया जाता है। इस बारे में और शोध एवं अनुसंधान की आवश्यकता है, न कि वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों को सिरे से खारिज करने की। वास्तव में प्राचीन ज्ञान में जो कुछ भी उपयोगी है उसे सहेजने की जरूरत है।

सम्पर्क- kshamasharma1@gmail.com

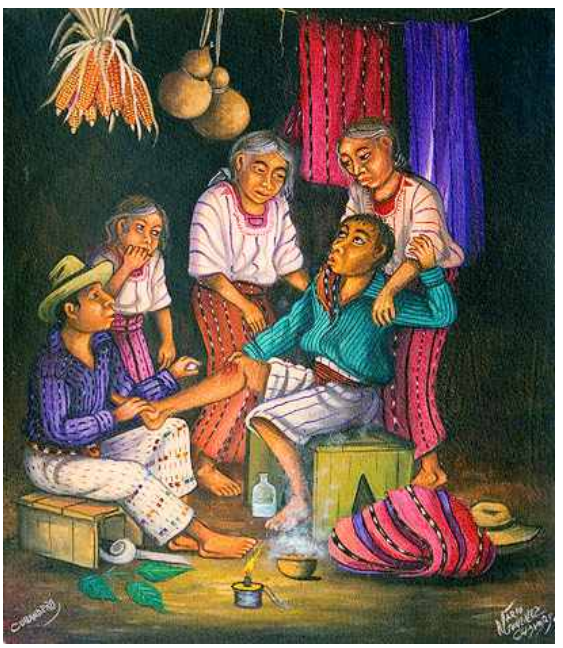

मानव शरीर के तथ्य

- मनुष्य के नाक और कान आजीवन बढ़ते रहते हैं।
- एक वर्ष में एक वयस्क व्यक्ति का हृदय इतना रक्त पम्प करता है जिससे ओलम्पिक आकार का एक पूल भर जाय।
- त्वचा मनुष्य के शरीर का सबसे बड़ा अव्यव (आर्गन) है।
- एक वयस्क व्यक्ति के त्वचा का वजन ३ से ४ किग्रा तक होता है।
- एक व्यक्ति एक दिन में ११००० लीटर वायु अपने श्वसन क्रिया में खपत करता है।
- मन चाहा संगीत सुनते वक्त मनुष्य के हृदय की धड़कन संगीत की लय के साथ धड़कता है।

नीला पृष्ठ सं. 2 का शेष

लग गया है। इसके लिए अनुवांशिकी कारण जिम्मेदार है। एक ताजा रिसर्च के अनुसार जिन लोगों में एक खास किस्म का जीन एचएलए डीआरबी (HLA-DRB) पाया गया उनमें कोरोना से मुकाबला करने की अतिरिक्त क्षमता देखी गई। ऐसे लोगों का शरीर न केवल कोरोना से आसानी से पार पा लेता है बल्कि उनमें इस बीमारी के लक्षण भी बहुत कम देखने को मिलते दिखते हैं।

इस रिसर्च के नतीजे हमें एक ऐसे अनुवांशिक परीक्षण की ओर ले जा सकते हैं जिससे यह संकेत मिल सकता है कि हमें भविष्य में टीकाकरण के लिए किस तरह के लोगों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

ब्रिटेन की न्यूकैसल यूनिवर्सिटी के ट्रांसलेशनल एंड क्लिनिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट से जुड़े डा कार्लोस एचेवरिया के नेतृत्व में एक वैज्ञानिक और चिकित्सा दल ने अपने अध्ययन में पाया कि कोरोना की चपेट में आकर जो लोग एसिम्टोमैटिक बने रहे या जिनमें बीमारी का कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखा उनमें यह खास किस्म का जीन सामान्य लोगों की तुलना में तीन गुना तक अधिक पाया गया। इससे साफ होता है कि यह खास जीन उन लोगों को कोरोना से कुछ स्तर तक सुरक्षा देता है। इस अध्ययन की रिपोर्ट एक शोध पत्रिका में प्रकाशित हुई है।

अध्ययन दल का मानना है कि यह अनुवंशिक प्रतिरोध का पहला स्पष्ट प्रमाण है। यह जीन भौगोलिक परिस्थिति (अक्षांश-देशांतर) पर भी निर्भर है। उत्तर और पश्चिम यूरोप में बड़ी संख्या में ऐसे लोग पाए गए जिनमें यह विशिष्टिता देखी गई। ब्रिटेन में हर पांच यूरोपीय लोगों में कम से कम एक व्यक्ति में यह खासियत पाई गई।

गलत तरह से इंजेक्शन लगाने पर खून का थक्का जमने का खतरा

हाल के दिनों में ऐसे कई मामले सामने आए हैं जब कोरोना वैक्सीन लगाए जाने के बाद लोगों ने खून का थक्का जमने (ब्लड क्लॉटिंग) की शिकायत की है। अब इससे जुड़ा

एक नया अध्ययन सामने आया है, जिसमें कहा गया है कि गलत तरीके से इंजेक्शन लगाने से भी ऐसा हो सकता है। शोध के मुताबिक वैसे तो इंजेक्शन मांसपेशी में लगना चाहिए, लेकिन अगर गलती से इसे रक्त वाहिका (ब्लड वैसल) में लगा दिया गया तो थक्का जमने की पूरी संभावना होती है।

चूहों पर किया गया है शोध- इस संबंध में चूहों पर अध्ययन किया गया है। चूहों को मांसपेशी के अंदर वैक्सीन देने पर जहाँ कोई समस्या नहीं आई वहीं नस में इंजेक्शन लगाने पर रक्त का थक्का बनने की समस्या दिखी। अप्रैल में डेनमार्क में हुए अध्ययन के बाद इंडियन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा कोरोना पर बनाई गई नेशनल टास्क फोर्स के सदस्य डा० राजीव जयदेवन ने इस बात को लेकर चेतावनी जारी की थी गलत तरीके से इंजेक्शन लगाने से ब्लड क्लाटिंग हो सकती है।

मांसपेशी तक पहुँचे सुई की नोक- सुई की नोक मांसपेशी तक पहुँचे, इसलिए इंट्रा मस्कुलर इंजेक्शन देते

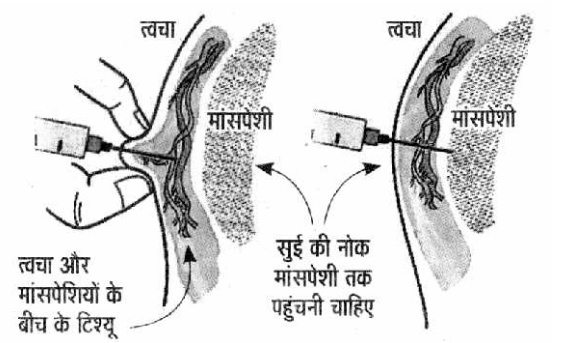

समय त्वचा को खींचा नहीं जाना चाहिए। अगर त्वचा को खींचा जाता है तो सुई की नोक केवल चमड़ी के नीचे के ऊतक (टिश्यू) तक पहुँच पाती है। ऐसी स्थिति में ना केवल टीके का प्रभाव कम हो जाता है बल्कि कभी-कभी यह रक्त वाहिकाओं में चला जाता है।

रक्त वाहिका में टीका पहुँचने से आती है दिक्कत- जर्मनी स्थित म्यूनिख यूनिवर्सिटी के एक क्लीनिकल ट्रायल और इटली की एक रिसर्च में यह बात सामने आई है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि सुई का अगला हिस्सा मांसपेशी के अंदर तक सही तरीके से नहीं पहुँचकर यदि रक्त वाहिका में चला जाता है तो ऐसी दिक्कतें सामने आती हैं। स्वास्थ्यकर्मी का के पूरी तरह प्रशिक्षित नहीं होने के चलते भी इस तरह की शिकायतें आती हैं। कुछ अकुशल स्वास्थ्यकर्मी वैक्सीन लगाने से पहले स्किन को खींचते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से सुई कुछ टिश्यू तक ही पहुँचती है। कुछ मामलों में वैक्सीन रक्त वाहिका में पहुँच जाती है। ऐसे में रक्त का थक्का जमने की पूरी संभावना होती है।

गर्भवती महिलाएँ भी लगवा सकेंगी वैक्सीन

स्वास्थ्य मंत्रालय ने गर्भवती महिलाओं को भी कोरोना टीका लगाने की मंजूरी प्रदान कर दी है। इसके लिए कोविन

पोर्टल पर पंजीकरण सुविधा आरंभ कर दी गई है। मंत्रालय ने इस बाबत राष्ट्रीय टीकाकरण तकनीकी सलाहकार समूह (एनटीएजीआई) की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए यह मंजूरी दी है।

मंत्रालय ने कहा कि इस फैसले के बाद गर्भवती महिलाएं कोविड टीका लगवाने के बारे में सुविचारित निर्णयले सकती हैं। वे टीकाकरण के लिए अब कोविन पर पंजीकरण कर सकती हैं या सीधे अपने निकटतम कोविड केंद्र पर जा सकती हैं। एनटीएजीआई के चेयरमैन डा० एन.के. अरोड़ा ने कहा कि कोरोना की दूसरी लहर के दौरान कोरोना संक्रमण से गर्भवती महिलाओं के मौते के मामलों में दो-तीन गुना तक की बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है। बयान में कहा कि सभी राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों को इस निर्णय की सूचना उसे वर्तमान राष्ट्रीय कोविड टीकाकरण कार्यक्रम के तहत लागू करने के लिए दे गई है।

- नेहा डेस्क

पृष्ठ सं. 4 का शेष

वायरस पर एक अलग तरह का दबाव डालेगा। दरअसल, वायरस को अपना संक्रमण बढ़ाने के लिए अब उन लोगों पर हमला करना होगा, जो वैक्सीन लगवा चुके होंगे। इसके लिए वह भविष्य में म्यूटेट होकर और भी खतरनाक हो सकता है। यदि कोविड-19 वायरस वैक्सीनेशन के बाद अपना क्रमिक विकास या स्वरूप बदलेगा, तब ही हमें अपने टीकों को अपडेट करना पड़ सकता है, जैसा कि अभी तक फ्लू वायरस के लिए हम करते आए हैं। इससे अब एक बात तो तय है कि अपने स्वास्थ्य को प्राथमिकता पर रखते हुए हमें कोरोना वायरस के साथ ही जीना पड़ेगा।

बीते वर्ष हमने कोविड-19 से बचाव के कड़े अनुदेशों को अपनी आदतों में शुमार किया और इस महामारी से मजबूती से लड़ना सीखा। यही सीख अब इस साल हमारे लिए मेंटल इम्युनिटी की तरह संक्रमण से सुरक्षित रखने का काम करेगी।

जन्तु विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

आर्डर फार्म

मै सामयिक नेहा पत्रिका का आजीवन/पंचवर्षीय सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। कृपया मेरी प्रति मुझे निम्न पते पर भेजने का कष्ट करें।

नाम.....

.....उम्र.....

पता.....

.....

.....

मैं.....

रु० का मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट नागंलिया एजूकेशन एण्ड हेल्थ एसोसिएशन (Nangalia Education & Health Assocation) के नाम से भेज रहा/रही हूँ।

....

दिनांक हस्ताक्षर

E-mail : .....

.....

Mob.: .....

आजीवन सदस्यता (20 वर्षो के लिए)	रु० 1200.00
आजीवन सदस्यता विदेशों के लिए	100$
पंचवर्षीय सदस्यता	रु० 300.00
एक प्रति	रु० 20.00

सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजें :-

कार्यालय : "सामयिक नेहा"

नागंलिया अस्पताल परिसर, नार्मल रोड, गोरखपुर- 273001

व्हाट्सएप कालम

सोशल मीडिया ने दुनिया को और करीब कर दिया है साथ ही अभिव्यक्ति को एक नया मंच दिया है। अब वे भी मुखर होकर अपनी बात साझा करने लगे है जो हिचकिचाते घबराते थे, अपनी बात रखते है।

इस मंच पर की जाने वाली बातें प्रायः ग्रुप विशेष या फिर व्यक्तिगत होती है। पर इनमें से बहुत ढेर सारी बातें ऐसी होती हैं जो मनुष्यता, सामाजिकता और राष्ट्रीयता को बहुत शिद्दत से अभिव्यक्त करती हैं या इसकी गहरी अनुभूति दे जाती हैं।

ऐसे संदेश स्थायी बने रहें ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचे इसके लिए ही कुछ खास व्हाट एप संदेशों को नियमित कालम के अन्तर्गत प्रकाशित करने का निर्णय हुआ है। इस पर आप की प्रतिक्रिया हमारा मार्ग दर्शन करेंगी और बेहतर करने की समझ पैदा करेंगी।

- ज्यादा ख्वाहिशें नहीं, बस ज़िन्दगी का अगला लम्हा पिछले से बेहतर हो काफी है।
- जिन्दगी सबसे खुबसूरत अहसास है किसी के खुशी का कारण बनना।
- आप जो करते हैं उसका असर पूरी दुनिया पर होता है और जो पूरी दुनिया करती है उसका असर आप पर होता है।
- सफलता हाथों की लकीरों में नहीं माथे के पसीने में मिलती है।
- ज़िन्दगी इतनी मुश्किल इसलिए है क्यूँकि लोग आसानी से मिली चीज की कीमत नहीं जानते।
- अगर आप सही हो तो कुछ भी साबित करने की जरूरत नहीं है बस सही बने रहो गवाही वक़्त खुद दे देगा।
- मंज़िल चाहे कितनी भी ऊँची क्यों ना हो, रास्ते हमेशा पैरों के नीचे होते हैं।
- अपनों से बस उतना रूठो की आपकी बात और सामने वाले की इज्जत बरकरार रहे।

Aryavart

Always Ahead

PET/CT & GAMMA CAMERA CENTRE

पूर्वांचल में पहली बार

कैंसर जाँच के अत्याधुनिक उपकरण

- ✓ PET/CT Scan
- ✓ Bone Scan
- ✓ Renal Scan/DTP/Ec.
- ✓ Cardiac Scan/MPI
- ✓ Thyroid Scan.. & Many more

ET/CT GAMMA CAMERA

11, कारपोरेट पार्क, सर्किट हाऊस के निकट
रामगढ़ ताल, पैडलेगंज, गोरखपुर

NANGALIA
HOSPITAL

ISO 9001 : 2000, Certifed
(Multi Speciality Hospital)

Dr. Mahendra Agrawal M.S. (Ortho)
Dr. Savita Agrawal M.D. (Gynae & Obest)

Dr. M.K. Budhlakoti M.D. (Skin & V.D.)
Dr. Dinesh Agarwal M.D. (Medicine)
Dr. Rajeev Agarwal M.Ch. (Neuro Surgery)
Dr. Harshvardhan Rai M.S. (Surgery)
Dr. Neeraj Nathani M.Ch. (Plastic Surgery)
Dr. Nishtha Nangalia D.G.O, D.N.B. (Gynae & Obest)
Dr. Kapil Goel M.D. (Psychiatry)

Specific Facility:

◆ Knee Replacment ◆ Hair Transplant
Neuro Surgery ◆ Plastic & Cosmetic Surgery
Laporoscopic Surgery ◆ Oral Cencer Surgery
◆ De-addication & Rehabilition Services

Narmal Road, Allahadadpur
Gorakhpur-273001 (U.P.)
Phone : (0551) 2336121, 2332095

नांगलिया शिक्षा एवं स्वास्थ्य संस्थान (नेहा) के कार्यक्रम

NANGALIA EDUCATION AND HEALTH ASSOCIATION (NEHA)

- ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य शिविर।
- स्वास्थ्य परीक्षण योजना।
- स्वास्थ्य कर्मियों का प्रशिक्षण।
- ग्राम्य शिक्षा का प्रसार।
- विकलांग व अनाथ पुनर्वास केन्द्र की स्थापना।
- प्रतिभा विकास में सहयोग।
- नेहा प्रकाशन।
- समन्वित चिकित्सा (Intergrated Medicine) का प्रसार।

कमल ऑफसेट प्रिन्टर्स, दुर्गा बाड़ी रोड, गोरखपुर - फोन : 2240695, मो.: 9415331881